In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

64

त्रिपुरा भारती लघुस्तव

16

लघुपण्डितकृत

ed. Jinavijaya Muni.

Pub. Rajasthan Oriental Research Institute,
JODHPUR, 1952.

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

*

*　　*

श्रीमातस्त्रिपुरे ! परात्परतरे देवि ! त्रिलोकीमहा-
सौन्दर्यार्णवमन्थनोद्भवसुधाप्राचुर्यवर्णोज्ज्वलम् ।
उद्यद्भानुसहस्रनूतनजपापुष्पप्रभं ते वपुः
स्वान्ते मे स्फुरतु त्रिलोकनिलयं ज्योतिर्मयं वाङ्मयम् ।।

*

इत्येतं त्रिपुरास्तवं लघुकृतं कामप्रदं मुक्तिदं
श्लोकोक्त्या च विराजितं गुरुतरैर्मन्त्रैः शुभैर्भूषितम् ।
भक्त्यैकाग्रमतिः पठिष्यति जनः श्रद्धान्वितो योऽन्वहं
तस्मै भव्यकवित्वमेति निबिडं लक्ष्मीश्च रोगक्षयः ।।

*　　*

*

किञ्चित् प्रास्ताविक

'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' में, प्रथम पुष्प अथवा आद्य रत्न-मणि के रूप में, प्रस्तुत 'त्रिपुरा-भारती-लघुस्तव'-स्वरूपात्मक एक लघुकृति प्रकट करने का मुख्य उद्देश्य मंगलार्थक है। हमारे पूर्वज ज्ञानी-पुरुषों ने प्रायः सभी ज्ञानमय कार्यों का प्रारम्भ शब्दजननी, पराशक्तिस्वरूपा, वाग्देवी, माता भारती अर्थात् सरस्वती की स्तुति, प्रार्थना आदि भावसूचक विविध प्रकार के मंगलमय वचनों द्वारा किया है

संस्कृत भाषा के कोषकारों ने 'वाग्देवी शारदा ब्राह्मी भारती गीः सरस्वती' आदि विविध नाम माता भारती के गिनाये हैं और वे सब नाम मंगलकारक होने से मांगल्यवाचक माने गये हैं।

सच्चिदानन्दमयी माता भारती-सरस्वती-वाग्देवी हमारी सब से अधिक उपास्या एवं आराध्या देवता है। वेदकाल से लेकर वर्तमान युग तक में, विद्याभिलाषी एवं विद्योपासक प्रत्येक भारतीय जन इस वाग्देवी की बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से स्तवन-अर्चना-उपासना करता आ रहा है। इस वाग्देवी भारती माता की स्तुति-प्रार्थना आदि करने के निमित्त आज तक, न जाने कितने ऋषियों, मुनियों, कवियों और विद्वानों ने, जितने स्तुति-स्तोत्र, स्तवनादि की रचनायें की हैं उनकी संख्या की कल्पना करना भी अशक्य है। ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, शाक्त आदि सभी संप्रदायों में सरस्वती की उपासना का समान माहात्म्य और समान आराधन प्रचलित है। वैदिक, जैन और बौद्ध संप्रदाय के आचार्यों एवं विद्वानों ने भगवती सरस्वती की स्तुति-स्वरूप विविध भाषाओं में हजारों छोटी बड़ी रचनायें की हैं। हजारों विद्याविद् और विद्या-अर्थी माता भारती के स्तुति-स्तोत्र कंठस्थ करते रहते हैं और विविध प्रकार से उनका पाठ-पूजन और स्मरण आदि करते रहते हैं। प्राचीन ग्रन्थ-भण्डारों का निरीक्षण करते समय हमें पूर्वाचार्य-रचित ऐसे अनेक स्तुति-स्तोत्रों के अवलोकन करने का अवसर मिला है; जो बहुत ही भावपूर्ण और फलप्रद प्रतीत हुए हैं। इन्हीं असंख्य

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

स्तुति-स्तोत्रों में प्रस्तुत 'त्रिपुरा-भारती-लघुस्तव' भी एक बहुत ही भावपूर्ण एवं रहस्यपूर्ण अर्थद्योतक लघु स्तुति है। मुझे अपने विद्याभ्यास के प्रारम्भिक जीवन में इस स्तुति का परिचय मिला। कोई पचास वर्ष से भी अधिक समय पहले, मैं एक समय राजस्थान के उदयपुर-राज्यान्तर्गत ऋषभदेव नामक तीर्थ-स्थान में यात्रार्थ गया हुआ था। वहाँ पर गाँव के बाहर एक जलाशय के निकट छोटा सा देवी का मन्दिर है, जिसके सामने बैठ कर प्रातः समय एक ब्राह्मण उपासक इस स्तुति का पाठ करता हुआ मेरे दृष्टिगोचर हुआ। मैंने बड़ी जिज्ञासा के साथ इस ब्राह्मण उपासक को स्तुति-पाठ के विषय में पूछा तो उसने बताया कि यह स्तुति पराशक्ति माता त्रिपुरा भारती की है और इस छोटे-से देवकुल के सम्मुख बैठ कर मैं रोज यह स्तुति-पाठ करता हूँ, यह देवकुल त्रिपुरादेवी का है, इत्यादि। मुझे यह स्तुति हृदयङ्गम करने जैसी लगी और मैंने उस ब्राह्मण उपासक को कुछ दक्षिणा देकर उससे इसकी प्रतिलिपि करवा ली। बाद में मैंने इसे कंठस्थ कर लिया और प्रतिदिन इसका स्वाध्याय करने लगा। बाद में मुझे कई जैन-भण्डारों का निरीक्षण करने का अवसर मिला तो उनमें मुझे इस स्तुति की लिखी हुई अनेक प्राचीन प्रतियों का परिचय प्राप्त हुआ और यह भी ज्ञात हुआ कि इस लघु-स्तुति का प्रचार जैन संप्रदाय में भी, प्राचीन-काल से बहुत अधिक रूप में प्रचलित रहा है। बाद में मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि कई अन्य विद्वानों ने इस स्तुति का प्रकाशन भी किया है। परन्तु, बहुत समय तक वह मेरे देखने में नहीं आया।

यद्यपि मैंने इस लघुस्तव को कंठस्थ कर लिया था और वारंवार इसका पाठ भी किया करता था—परन्तु, इसके रहस्यमय और बहु-अर्थ-पूर्ण अनेक पद्यों का मुझे विशेष रहस्य ज्ञात न हो सका। इसकी कोई व्याख्या का भी मुझे पता न चल सका था। मैंने इसके विषय में कुछ अन्य साधु-मुनियों से जिज्ञासा की तो मालूम हुआ कि वे इस विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं। प्रस्तुत स्तुति में मुख्य कर के जिस त्रिपुरा विद्या के द्योतक मंत्राक्षरों का उल्लेख किया गया है उनका अंतर्भाव इस प्रकार की सरस्वती की स्तुति करने वाली अनेक रचनाओं में किया हुआ प्राप्त होता है, पर उनमें नाना प्रकार के वैविध्य का और न्यूनाधिक मंत्राक्षरों अथवा वीजात्मक वर्णों का संचय मात्र प्रतीत होता है। कोई क्रमबद्ध और आम्नाययुक्त तत्त्व का उनमें अभाव सा ही है। इसलिये किसी आम्नायविद् गुरु की शोध करता रहा, परन्तु दुर्भाग्य से उसकी प्राप्ति न हुई और इस स्तुति का सामान्य रहस्य भी ठीक-ठीक जानने में मैं बहुत समय तक सफल न हुआ। पीछे से ज्ञात हुआ कि सुप्रसिद्ध 'त्रिवेन्द्रम्-संस्कृत-ग्रन्थावली' में

श्रीगणपति शास्त्री ने इस स्तुति को एक विस्तृत व्याख्या सहित, सन् १९१७ में ही प्रकाशित कर दी थी, परन्तु बहुत समय तक वह मेरे देखने में नहीं आई। श्रीगणपति शास्त्री ने इस रचना को केवल 'लघु-स्तुति' नाम से प्रकाशित की थी, अतः इस संक्षिप्त नाममात्र से प्रस्तुत 'त्रिपुरा-भारती-लघु-स्तुति' स्वरूप रचना का आभास होना भी अपरिचित जिज्ञासु के लिये असंभव-सा रहना स्वाभाविक है

सन् १९४२-४३ में राजस्थान के बहु-प्रसिद्ध एवं शास्त्र-समृद्ध जैसलमेर के ज्ञानभण्डारों का निरीक्षण करने का जब मुझे चिर-अभिलषित धन्य अवसर प्राप्त हुआ तो वहाँ के एक ज्ञान-भण्डार में, प्रस्तुत पुस्तक में जो व्याख्या प्रकाशित हो रही है, उसकी एक प्राचीन, सुन्दर एवं सुवाच्य हस्तलिखित प्रति का दर्शन हुआ। उसके दर्शनमात्र से ही मुझे जो हर्ष और आनन्द का आवेग हो आया वह अकथ्य-सा लगा। मैंने बड़ी उत्कंठा और उत्सुकता के साथ उस प्रति के पाठ का बड़ी एकाग्रता के साथ एक-आसनबद्ध होकर सम्पूर्ण पारायण कर डाला। वर्षों की नहीं, युगों की जो जिज्ञासा-रूप तृष्णा बनी हुई थी वह कुछ शान्त होती-सी प्रतीत हुई। मैंने तत्काल इस प्रति पर से एक प्रतिलिपि स्वयं अपने हाथ से कर ली, और उसी समय मन में संकल्प हुआ कि इस व्याख्या के साथ इस 'लघुस्तव' को सुन्दर रूप से प्रकाशित किया जाय। बाद में वहीं के एक अन्य भण्डार में इस स्तुति की एक अन्य व्याख्यात्मक पुस्तिका भी प्राप्त हुई जिसका नाम कर्ता ने 'पंजिका नाम विवृतिः' लिखा है। इसका अवलोकन करने से ज्ञात हुआ कि यद्यपि यह पञ्जिका-रूप विवृति बहुत संक्षेपात्मक है और मुख्य रूप से सोमतिलकसूरि-कृत वृत्ति के आधार पर रची हुई है, परन्तु कहीं-कहीं अन्य रचना का भी कोई आधार लिया गया मालूम देता है। कुछ अन्य आम्नाय-प्राप्त उल्लेख भी उपलब्ध होते हैं। मैंने इस पंजिका की भी प्रतिलिपि कर ली और पूर्व प्राप्त वृत्ति के साथ इसका भी प्रकाशन कर देने का मेरा संकल्प हुआ।

सन् १९५० में नूतननिर्मित राजस्थान सरकार ने मेरे निर्देशकत्त्व में 'राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर' नामक नूतन शोध-संस्थान की जयपुर में स्थापना की (जो अब 'राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान के विशिष्ट नाम से अभिहित है और जिसका केन्द्रीय कार्यालय जोधपुर में अवस्थित है)। इस संस्थान द्वारा 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' का विशाल प्रकाशन कार्य निश्चित किया गया और इस माला के प्रथम पुष्प अथवा प्रथम मणि के रूप में, सर्व-प्रथम मैंने जैसलमेर के ज्ञान-भण्डार में प्राप्त उक्त 'त्रिपुरा-भारती-लघुस्तव' की सोमतिलकसूरिकृत

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

वृत्ति और अज्ञात-कर्तृक 'पंजिका-विवृति' को प्रकाशित करने का निश्चय किया। पाठकों के कर-कमलों में जो पुस्तक-रूप पुष्प विद्यमान हैं वह उसी निश्चय का परिणाम है।

प्रस्तुत पुस्तक में लघुस्तव की जो व्याख्या प्रकाशित हो रही है वह एक जैन विद्वान् की कृति है। इस व्याख्या के कर्ता का नाम सोमतिलकसूरि है, जो सिंहतिलक नामक आचार्य के शिष्य थे। सोमतिलकसूरि ने लघुस्तव को यह व्याख्या कंबोज जाति के स्थानु नामक क्षत्रिय ठाकुर की प्रार्थना पर की थी। इसका रचना-काल संवत् १३९७ विक्रम संवत्सर है और घृतघटि नामक पुरी में इसकी रचना हुई हैं। इस वृत्ति का नाम कर्ता ने 'ज्ञान-दीपिका' दिया है और इसका परिमाण ४७४ अनुष्टुप् श्लोक जितना हैं। यद्यपि टीकाकार एक जैन विद्वान् हैं परन्तु उनको तन्त्र-शास्त्र-विषयक शाक्तमत का बहुत अच्छा ज्ञान होना मालूम देता हैं। इन्होंने अपनी व्याख्या में जगह-जगह अनेक तन्त्र-शास्त्रों के उद्धरण दिये हैं और उनका नामोल्लेख भी किया है। यद्यपि यह टीका बहुत विस्तृत एवं विविध-रहस्यपूर्ण नहीं है तथापि टीकाकार ने मूल रचना का संपूर्ण भाव और रहस्योद्‌घाटन बहुत अच्छी तरह कर दिया है, जिससे बुद्धिमान् जिज्ञासु को लघु पण्डित की इस लघु स्तुति का अर्थावबोध बहुत अच्छी तरह हो सकता है। अभी तक यह व्याख्या प्रायः अज्ञात एवं अप्रसिद्ध रही, अतः इसका यह प्रकाशन जिज्ञासुजनों के लिए अवश्य आदरणीय होगा। टीकाकार के राजस्थान-निवासी होने के कारण और राजस्थान ही के एक विद्या-प्रेमी क्षत्रिय ठाकुर की प्रार्थना पर इसकी रचना होने के कारण 'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' में इसका प्रकाशित होना सर्वथा समुचित है।

जैसलमेर के ज्ञान-भण्डार में उक्त रूप से हमें जो प्रथम प्रति प्राप्त हुई, उसके बाद राजस्थान में से अन्यान्य भी कई प्राचीन-अर्वाचीन प्रतियाँ प्राप्त हुईं जिनमें से कुछ नमूनेदार प्रतियों के फोटो चित्र भी इसमें संलग्न किये गये हैं। किसी-किसी प्रति में सरस्वती की चित्रात्मक प्रतिकृतियाँ भी आलेखित मिलीं जिनमें से कुछ चित्रों के ब्लाक बनवा कर उनका मुद्रणांकन भी देने का प्रयत्न किया गया है। सरस्वती के ये प्रतीकात्मक चित्र राजस्थान की पुरातन चित्रकला का भी परिचय कराते हैं। 'राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान' के विशाल ग्रन्थ-संग्रह में सरस्वती के ऐसे सैकड़ों प्रतीकात्मक चित्रों का संग्रह विद्यमान है, जो भिन्न-भिन्न शैलियों की, भिन्न-भिन्न स्थानों की एवं भिन्न-भिन्न शताब्दियों की चित्रकला का दिग्दर्शन कराने वाले हैं।

सन् १९५१ में जब हमने प्रस्तुत 'लघुस्तव' का मुद्रण-कार्य प्रारम्भ कराया

तभी से हमारे मन में यह भी उत्कंठा रही कि हम इसके साथ एक विस्तृत निबन्धात्मक भूमिका भी लिखें जिसमें शब्दतत्त्व-जननी पराशक्ति वाग्देवी अर्थात् भगवती भारती सरस्वती के विषय में वैदिक, जैन, बौद्ध और शाक्त तंत्र-शास्त्रों में जो-जो वर्णना और कल्पना आलेखित हुई है उसका कुछ दिग्दर्शन और इतिहास अंकित हो। इसके साथ स्थापत्य और चित्रात्मक कला द्वारा भारत के विविध स्थानों में सरस्वती की जो भिन्न-भिन्न रूप में उपलब्धि होती है उसका भी कुछ परिचय संगृहीत हो। इस विचार से हमने विपुल सामग्री एकत्रित करनी भी शुरू की। एतदर्थ अनेक उल्लेख और बहुत से चित्रों का संग्रह भी किया गया। इस प्रकार विस्तृत भूमिका लिखने की मृगतृष्णा के कारण वर्षों तक प्रस्तुत रचना का प्रकाशन भी रुका रहा। मेरी शारीरिक दुर्बलता और बहुमुखी कार्य-विवशता के कारण दुर्भाग्य से वह उत्कण्ठा पूर्ण न हो सकी। माता भारती की कृपा का पात्र मैं नहीं बन सका। पिछले तीन-चार वर्षों से मेरी आंखों की ज्योति भी प्रायः क्षीण होती गई और मैं स्वयं लिखने-पढ़ने में असमर्थ-सा होता गया। जो सामग्री मैंने संकलित की थी वह भी मेरे सतत भ्रमणशील जीवन के कारण स्थान-भ्रष्ट होकर छिन्न-भिन्न हो गई। उक्त प्रकार की मेरी मृगतृष्णा-रूप दुरभिलाषा के कारण यह 'लघुस्तुति' जो सन् १९५२ में ही जिज्ञासुजनों के कर-कमलो में उपस्थित हो जाने वाली थी (जैसा कि इसके मुखपृष्ठ पर छपे हुए उल्लेख से ही ज्ञात हो रहा है) वह आज १०-११ वर्ष बाद सर्वजन-सुलभ होने जा रही है। माता भारती की किसी अज्ञात इच्छा के सिवाय हमारे पास इसका कोई समाधान नहीं है।

'त्रिपुरा भारती' का तात्पर्य

हमारे इस पितृदेश-स्वरूप पुण्य भूखण्ड आर्यावर्त के इतिहासकारों का बहुमत है कि जिस आर्यजाति के निवासस्थान के कारण इस देश का नाम आर्यावर्त प्रसिद्ध हुआ है उन आर्यजातीय जनसमूहों में से एक विशिष्ट जनसमूह, भरतजनों के नाम से प्रसिद्ध था। उनकी प्रभुशक्ति के विस्तार के साथ यह भूखण्ड भरतखण्ड अथवा भारतवर्ष के नाम से हमारे प्राचीन साहित्य में उल्लिखित हुआ। उन भरतजनों की मातृभाषा, भारती कहलाई। इस भारती वाणी के सरस्वती, शारदा, ब्राह्मी आदि अनेक नाम प्रचलित हुए।

प्राचीन भाषाविज्ञान के अनेक विद्वानों का मत है कि यह भारती भाषा वही संसार-प्रसिद्ध हमारी संस्कृत भाषा है, जिसमें संसार के सब से प्राचीन सूक्त स्वरूप में प्रसिद्ध ऋग्वेदादि ग्रन्थ हैं। आर्यजातीय जनों की मूल भाषा संस्कृत-मयी थी। आर्य लोग अपने को सुर अर्थात् देवजाति की सन्तान मानते थे और

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

उत्तरजनों को असुर या दैत्य कहते थे। इसीलिए अपने पूर्वजों की भाषा को वे देववाणी अथवा सुरगिरा के नाम से संबोधित करते थे। इसलिए संस्कृत भाषा का यह नाम भी हमारे साहित्य में सुप्रसिद्ध रहा है। आर्यों की यह मातृभाषा-रूप जो देववाणी मानी गई उसकी मूलाधार-भूत जो अज्ञेय शक्ति थी वही वास्तव में भारती या वाग्देवी के रूप में आराध्य-देवता बनी। यह वाग्देवी विश्व-व्यापिनी मानववाणी की जननी अथवा आविर्भाविका दिव्यशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

यह वाग्देवी शब्दमात्र की जननी है इसलिए वाग्वादिनी-स्वरूप यह एक परम शक्ति मानी गई है। शब्द-तत्त्वविदों का मत है कि यह चराचर विश्व शब्दात्मक शक्ति का ही कार्यरूप परिणाम है। यह शब्द-शक्ति ही परब्रह्म है। दृश्य और अदृश्य सब पदार्थ इस शक्ति के परिणाम-रूप हैं। इसी अज्ञेय और अदृश्य शक्ति को ऋषि-मुनियों ने वाग्देवी या वाग्वादिनी के नाम से संबोधित किया। इसी वाग्वादिनी-स्वरूप दैवी शक्ति के प्रभाव से मनुष्यजाति में ज्ञान-ज्योति का आविर्भाव हुआ। मनुष्य जाति का जो कुछ शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास आज तक हुआ वह इसी ज्ञान-ज्योति का प्रभाव है और इसी ज्ञानज्योति ही की प्राप्ति के लिए हमारे पूर्वजों ने सदैव सर्वोत्कृष्ट कामना की है।

प्रस्तुत 'लघुस्तव' के कर्ता कवि ने भी इसी ज्योतिर्मयी ज्ञान-शक्ति की प्राप्ति की कामना से प्रेरित होकर इसमें भगवती भारती-वाग्वादिनीस्वरूप दैवी शक्ति की प्रभुता, प्रार्थना और साधना आदि का वर्णन करने का प्रयत्न किया है। व्याख्याकारों के और आम्नाय वालों के मत से कर्ता का नाम लघु-पंडित या लघुभट्टारक, ऐसा माना जाता है। स्तुति के अन्त में 'लघुस्तव' शब्द का [illegible] उल्लेख भी मिलता है। अतः यह मानने में कोई बाधक प्रमाण नहीं है कि कर्ता का नाम 'लघु' शब्द से अंकित न हो। लवुस्तव का दूसरा अर्थ यह भी घटित होता है कि प्रस्तुत स्तुति-स्वरूप रचना केवल २१ पद्यात्मक है इसलिए कवि ने इसको अपनी एक 'लघु-कृति', छोटी-सी रचना, कहना उचित माना हो।

कवि के समय और स्थान आदि के विषय में कोई भी अन्य ऐतिहासिक किंवदन्ती या उल्लेख प्राप्त नहीं है। पर हमारी एक कल्पना है कि यह लघु पण्डित प्राचीन राजस्थान के निकटवर्ती प्रदेश का होना चाहिए। इस स्तुति में कवि ने एक ऐतिहासिक आभास कराने वाला पद्य ग्रथित किया है जिसमें कहा गया है कि भगवती त्रिपुरा भारती की उपासना से एक सामान्य क्षत्रिय-कुल में जन्म लेने वाला वत्सराज नामक राजपुत्र भी चक्रवर्ती-पद को प्राप्त कर पृथ्वी में सम्राट् के

नाम से घोषित हुआ और जिसकी चरण-सेवा में सामान्य जन तो क्या बड़े-बड़े धुरन्धर विद्याधर पण्डित लोक भी तत्पर रहते थे, इत्यादि।* हमारा अनुमान है कि यह वत्सराज (जिसका प्राकृत नाम वच्छराज है) प्रतिहारवंशीय सम्राट् था, जो पहले राजस्थान प्रदेश का एक सामान्य-सा प्रतिहार ठाकुर था और पीछे से अपनी प्रभुशक्ति के प्रभाव से सारे उत्तरापथ का बड़ा सम्राट् बना। राजस्थान के कुछ वृद्ध चारणों के मुख से सुना है कि वत्सराज पड़िहार सिरोही जिला के अंतर्गत अजारी नामक स्थान में जो प्राचीन त्रिपुरा भारती का पीठ था उसका अनन्य उपासक था और वहाँ पर उसने त्रिपुरादेवी की विशिष्ट आराधन-उपासना आदि की थी और उसके कारण वह पीछे से एक बड़ा सम्राट् बन गया था। चारण लोग प्रायः शक्ति के उपासक होते हैं। उनका यह भी कथन था कि लघु-पण्डित स्वयं चारण जाति का कवि था और वह उक्त त्रिपुरा-पीठ का मुख्य अधिष्ठाता था। इस किंवदन्ती में कितना तथ्यांश है इसका कोई अन्य प्रमाण ज्ञात नहीं है, पर 'लघुस्तव' का कर्ता त्रिपुरा शक्ति का परम उपासक होकर श्रद्धानिष्ठ शाक्त था, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस छोटी-सी स्तुति में त्रिपुरा भारती की उपासना का प्रत्यक्ष फल प्रदर्शित करने के लिए कवि ने वत्सराज का जो उदाहरण उल्लिखित किया है वह अवश्य सुज्ञात ऐतिहासिक तथ्य का निर्देशक है, ऐसा कहना पर्याप्त होता है।

प्रस्तुत स्तुति में 'त्रिपुरा भारती' की स्तवना की गई है। त्रिपुरा शब्द का क्या भाव है यह व्याख्याकार ने स्वयं विस्तार से वर्णन किया है। इसका रहस्य व्याख्या के पढ़ने से ही ज्ञात हो सकता है।

भगवती भारती या वाग्देवी के अनेक स्वरूप और अनेक नाम हैं, उनमें एक नाम 'त्रिपुरा' भी बहुत प्रसिद्ध और बहुत भावद्योतक है। इसी त्रिपुरास्वरूप भारती माता का प्रस्तुत स्तुति में बहुत रहस्यपूर्ण और आम्नाय-गर्भित वर्णन किया गया है, इसलिए कवि ने इसका नाम 'त्रिपुरा भारती स्तुति' या स्तव, ऐसा निर्दिष्ट किया है

---

* जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभृतां सामान्यमात्रे कुले
निःशेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभवद्
देवि त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः॥

—त्रि. भा. लघुस्तव, पद्य १२

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

भारती देवी के भिन्न-भिन्न स्वरूप और भिन्न-भिन्न शक्ति-प्रदर्शक ऐसे मुख्य २४ नाम कवि ने प्रस्तुत स्तुति के 'माया कुण्डलिनी' इत्यादि शब्दों से प्रारम्भ होने वाले १८ वें पद्य में उल्लिखित किये हैं, उन्हीं में से एक नाम 'त्रिपुरा' भी है। इस 'त्रिपुरा' शक्ति की आराधना करने के लिए जिन मंत्रात्मक वर्णों या बीजाक्षरों का जाप किया जाता है उसका उल्लेख स्तुति के प्रथम पद्य में किया है। इस मंत्र के 'ऐं क्लीं सौं' इस प्रकार तीन वर्ण अथवा पद हैं और ये तीन पद 'पुर' शब्द से भी तंत्र-शास्त्रों में व्यवहृत हुए हैं। अतः इन वर्णों के ध्यानादि के प्रभाव से जो शक्ति प्रसन्न होती है और कामना की सिद्धि प्रदान करती है वह 'त्रिपुरा' है।

लघु पण्डित ने इस लघुस्तुति में 'त्रिपुरा' शक्ति के मंत्रात्मक अक्षरों द्वारा जो भिन्न-भिन्न विश्लेषणात्मक संकेतों का विन्यास किया है और उनके द्वारा जिन अगणित मंत्रों का उद्धार होना बतलाया है वह सर्वथा संप्रदायगत एवं गुरु-प्रदर्शित आम्नाय ज्ञातव्य है। इन तीनों वर्णों में जो रहस्य छिपा हुआ है उसका विस्तार समझने के लिये, प्रस्तुत स्तुति के एक व्याख्याकार राघवानन्द मुनि ने जो मंत्रात्मक शब्द गिनाये हैं उनकी संख्या एक लाख बासठ हजार (१६२०००) जितनी होती है। कर्ता ने स्वयं १९वें पद्य में 'आ ई' इत्यादि अक्षरों के मेल से 'त्रिपुरा' के २०,००० (बीस हजार) से भी अधिक रहस्यमय नामों का विन्यास सूचित किया है।

तंत्रशास्त्रविषयक ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि 'लघुस्तव' रूप यह लघु रचना इस विषय के विद्वानों की दृष्टि में बहुत ही प्रमाणभूत और आधार स्वरूप मानी गई है। अनेक विद्वानों ने अनेक ग्रंथों में इस लघुस्तोत्र के अनेक पद्यों को उद्धृत किया है और उनके उल्लेखों एवं अर्थों का विवेचन तथा रहस्योद्घाटन करने का प्रयत्न भी किया है। उदाहरणार्थ—परशुराम कल्पसूत्र, शक्तिसंगमतंत्र, ललितासहस्रनामभाष्य, सौन्दर्य-लहरी-व्याख्या आदि ग्रन्थों का नामोल्लेख किया जा सकता है। इन ग्रन्थों में इस लघुस्तोत्र के अनेक पद्यों का उद्धरण किया गया है और तद्गत रहस्यों का स्पष्टीकरण किया गया है। प्रस्तुत संक्षिप्त वक्तव्य में इन सबका निर्देश करना अप्रासंगिक होगा।

स्तुतिकर्ता कवि दृढ़ श्रद्धा के साथ अन्त में कहता है कि—जिस भक्तजन की अनन्य भक्ति भारती माता की इस स्तुति के पाठ करने में संलीन होगी उसकी मनोवाञ्छा भारतीदेवी पूरी करेगी।

*

मातङ्गीस्तोत्र

प्रस्तुत संकलन में 'लघुस्तव' के बाद ६५ पद्यों वाला एक 'मातङ्गीस्तोत्रम्' भी मुद्रित किया गया है। इस स्तोत्र की एक मात्र प्राचीन प्रति हमें उपलब्ध हुई थी। प्रतिगत उल्लेखानुसार यह किसी 'उमासहाचार्य' विरचित 'आगमसारतंत्र' में से उद्धृत किया गया है। 'लघुस्तव' में कर्ता ने वाग्देवी भारती के जो मुख्य-मुख्य नाम गिनाये हैं उनमें 'मातङ्गी' नाम भी सम्मिलित है।* इस मातङ्गी-स्तोत्र में भी ३६वें पद्य में "भैरवी त्रिपुरा लक्ष्मीर्वाणी मातङ्गिनीति च। पर्यायवाचका ह्येते" ऐसा उल्लेख करके सूचित किया गया है कि—भैरवी, त्रिपुरा, वाग्देवी, मातङ्गी, ये शब्द एक ही महाशक्ति के पर्यायवाचक नाम हैं। इसी तरह भवानी, लक्ष्मी, शक्ति, पार्वती, दुर्गा आदि जिन-जिन देवता-रूप दिव्य शक्तियों के स्तुति-स्तोत्र आदि उपलब्ध हैं उन सब में प्रायः मातङ्गकन्या-स्वरूपा महाशक्ति मातङ्गी का नाम निर्देश किया हुआ भी मिलता है। प्रस्तुत मातङ्गी-स्तोत्र में प्रधान रूप से इसी महाशक्ति की स्तवना, प्रार्थना और आराधना आदि का वर्णन है। इसमें मातङ्गीदेवी की भूतभावन भगवान् शंकर की अर्धाङ्गस्वरूपा दिव्य शक्ति के रूप में स्तुति की गई है और उसमें भी मुख्य करके वीणावादिनी गायन-देवता-स्वरूपा का ध्यान लक्षित है। अतः 'त्रिपुरास्तव' की तरह यह स्तोत्र भी वाग्देवी भगवती त्रिपुरा भारती के ही एक विशिष्ट स्वरूप का बहुत भावपूर्ण और हृदयोल्लासक स्तुति-पाठ है।

कवि कहता है कि—

ज्ञानात्मिके जगन्मयि निरंजने नित्यशुद्धपदे।
निर्वाणरूपिणि परे त्रिपुरे! शरणं प्रपन्नस्त्वाम् ॥

भक्त कवि ने इस स्तुति में 'त्रिपुरा भारती' की वीणावादिनी-रूप गायन-देवतात्मक शक्ति ही को ध्येय रूप लक्षित किया है और वह भी एक भिल्ल-कुटुम्बिनी पल्ली-निवासिनी भिल्ली के रूप में। कदम्ब-वन में बसने वाली, शर-चाप धारण करने वाली और वीणा के वादन में तल्लीन रहने वाली भवानी शबरी का जो स्वरूप कवि ने आलेखित किया है वह अत्यन्त हृदयङ्गम करने योग्य और भावोत्पादक है।

---

*माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥
—त्रि. भा. लघुस्तव, पद्य १९

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

यह स्तोत्र कहीं प्रकाशित हुआ हो, ऐसा ज्ञात नहीं, अतः वाग्देवी के उपासक-जनों के पठन हेतु इसको भी हमने प्रस्तुत 'त्रिपुरा भारती स्तव' के साथ संकलित कर देना उचित समझा। साथ में कुछ अन्य छोटे-छोटे दो-एक स्तुति-स्तोत्र भी लगा दिये हैं, जो हमें अधिक पठनीय मालूम दिये।

अनेन स्तोत्रपाठेन सर्वपापहरेण वै ।
प्रीयतां परमा शक्तिर्मातङ्गी सर्वकामदा ॥

कवि के इस आशीर्वादात्मक उद्‌गार की सफलता प्रस्तुत कृति के पाठकों को सर्वथा प्राप्त हो, यही हमारी कामना है। तथास्तु।

आषाढ़ी दशहरा, २०२० वि०

—मुनि जिनविजय

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला—ग्रन्थांक १

त्रिपुरा भारती लघुस्तव

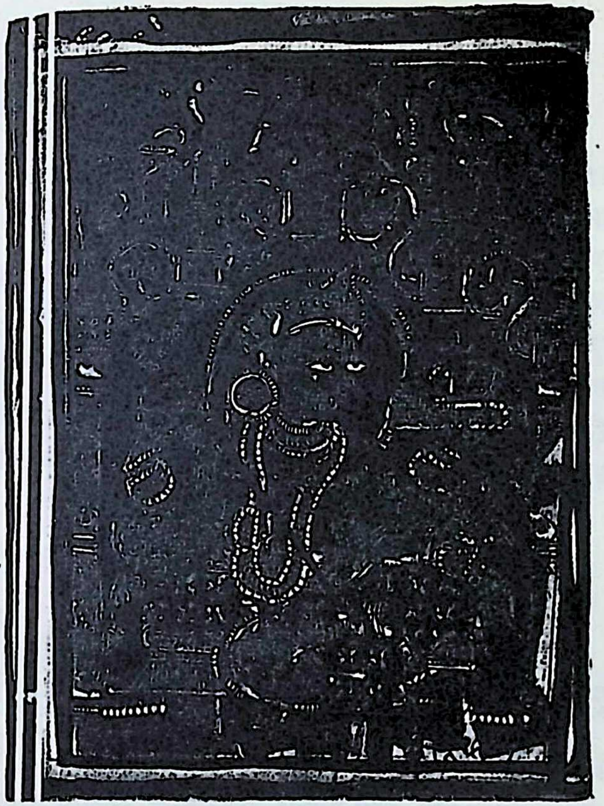

राजस्थानीय शैली का सरस्वती का ५०० वर्ष पुराना सौवर्णांकित सुन्दर चित्र
चित्र के ऊपर के भाग में नूतन भारत के राष्ट्रीय पक्षी मयूर-युगल का चित्र दर्शनीय है

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

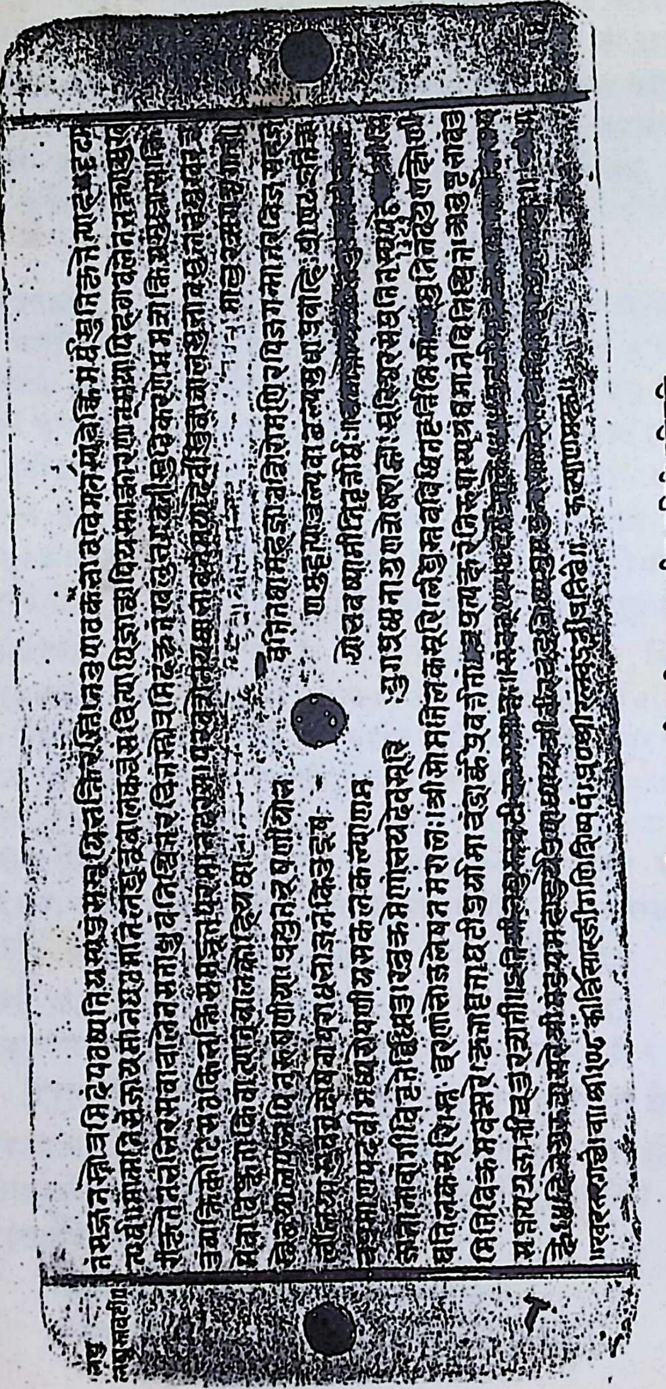

त्रिपुरा भारती लघुस्तव-टीकाकी एक प्राचीन प्रतिकी प्रतिकृति

INSTITUT FRANÇAIS BIBLIOTHÈQUE Indologie PONDICHERRY-605 001

श्रीसोमतिलकसूरिविरचित-व्याख्यासमन्वितः

त्रिपुरा भारती लघुस्तवः

卐

॥ ॐ नमः त्रिपुरायै ॥

सर्वज्ञं पुण्डरीकाख्यं शङ्करं नाभिसंभवम् ।
प्रणम्य टीकां वक्ष्येऽहं संक्षेपेण लघुस्तवे ॥ १ ॥

इह हि पूर्वं केनचिन्महानरेन्द्रेण, निःस्वः सभार्यो दूरदेशान्तरादागतः समस्तशास्त्रपारंगमः कोऽपि पण्डितग्रामणीर्विद्याविशेषोत्कर्ष पृष्टः, शीर्षे स्वहस्तकमलविन्यासमात्रेण सर्वथा निरक्षरस्यापि शिशोर्गङ्गातरङ्गानुसारिणीं तात्कालिकाभिनवकाव्यकर्त्तव्यताम् आह । ततश्च सद्यो भूपभ्रूक्षेपचालनेन राजपुरुषैरुपाहृतः स्पष्टमस्पष्टोऽप्यष्टवर्षदेशीयो बालकः संस्नाप्य कौरवस्त्रालङ्कृतः पुरस्तादुपवेश्य मस्तके दक्षिणहस्तं धृत्वा 'वद' इति विदुषा साक्षेपं भाषितोऽनेककर्म्मक्षममन्त्रपदगर्भाम्–'ऐँद्रस्येव शरासनस्य'–इत्येकविंशतिकाव्यमयीं नवकोटिकात्यायनीस्तुतिं व्याजहार । तस्याश्च स्वतोऽपि मन्दमतिसत्त्वानुकम्पया विवरणमभिदध्महे ।

तद्यथा–

ऐँद्रस्येव शरासनस्य दधती मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः ।
एषाऽसौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोः सदाहःस्थिता
छिन्द्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ॥ १

व्याख्या–एषाऽसौ प्रत्यक्षा प्रत्यक्षरूपा त्रिपुरा देवी नोऽस्माकं अघं पापं दुःखं वा छिन्द्याद् विनाशयेदिति संबन्धः । 'अघं दुःखे च पापे च'–इत्यनेकार्थवचनात् । किंभूता देवी ? वाङ्मयी वचनरूपतां प्राप्ता । अन्यच्च ज्योतिर्मयी अनिर्वचनीयतेजोरूपा इत्यर्थः । एतेन गुरुमुखेन प्रत्यक्षा ज्ञानरूपत्वाद्, अर्वाग्दृशामप्रत्यक्षा चेति, उभयरूपपरमशक्तिध्यानेन दुःखपापच्छेदस्तज्ज्ञानां सुलभ एव । कथम् ? सहसा अतर्कितमेव । लयो हि ज्ञानकारणमित्युक्तेः । कैः कारणभूतैस्त्रिभिः पदैर्विशेषणभूतैः । किं कुर्वती ? ऐन्द्रस्येवेति । ऐन्द्रस्य इन्द्रसंबन्धिनः शरासनस्य धनुष इन्द्रधनुष इव हरितपीतसितासितमाञ्जिष्ठरूपपञ्चवर्णां प्रभां कान्तिं दधती धारयन्ती । कथम् ? मध्ये ललाटं ललाटस्य मध्ये मध्येललाटम् । 'पारेमध्येऽग्रेऽन्तः

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

षष्ठ्या वा' इति सूत्रेण विकल्पेन कर्म्मत्वम्। सर्वाङ्गतेजोमयत्वेऽपि भगवत्या ललाट एव पञ्चवर्णोल्लासः। अन्यच्च शिरसि मस्तके। अनुष्णगोरिव चन्द्रस्येव सर्वतः समंतात् शौक्लीं शुक्लरूपां कान्तिमातन्वती विस्तारयन्ती। शुक्लः पटगुणस्तस्येयं शौक्ली। एवमादेरणो व्युत्पत्तिः। दशमद्वारे संपूर्णशशाङ्कधवलकान्तिरित्यर्थः। अन्यच्च हृदि हृदयकमले। सदाहःस्थिता सदाऽह्नि दिवसे स्थिता वर्तमाना। उष्णांशोः सूर्यस्य द्युतिः कान्तिरिव हृदये सुवर्णसवर्णा भगवतीति सामान्यवृत्तार्थः।

विशेषतश्चास्मिन् वृत्ते सामान्यविशेषाभ्यां त्रिपुराया मन्त्रोद्धारोऽस्ति। वक्ष्यति च प्रान्ते विंशे काव्ये 'बोद्धव्या निपुणैर्बुधैः स्तुतिरियम्'—'यत्राद्ये वृत्ते मन्त्रोद्धारविधिः ससंप्रदायः सविशेषश्च कथितः।' इत्यादि। स एव प्रकाश्यते—यथा—प्रथमे वृत्ते यत् प्रथमं पदम्, प्रथमपदे यत् प्रथममक्षरम्, तत् प्रथमं बीजम् ऐंकारः। द्वितीयपदे यद् द्वितीयमक्षरम् क्लीँ इति द्वितीयं बीजम्। तृतीयमक्षरम् सौ तदपि हस्थिते हकारोपरि स्थितमिति। ह्सौ जातम्। इदमेव विशेषणं पुनरावृत्त्या व्याख्यातम्। हकारेण विन्दुना स्थितं निष्ठितम्। कौलकमते हि हकारो गगनमुच्यते। गगनं च शून्यं बिन्दुरिति भवति। ह्सौँ तृतीयं बीजाक्षरमिति त्रिपुरामूलमन्त्रो ज्ञेयः।

ध्यानविभागोऽप्यत्रैव। आदिमं बीजं ललाटे पञ्चवर्णम्, द्वितीयं शीर्षे सितवर्णम्, तृतीयं हृदये पीतवर्णं ध्येयम्। किंच सहसा पदैस्त्रिभिरिति विशेषो ज्ञेयः। सह हकार-सकाराभ्यां वर्त्तते इति सहसा। बीजत्रयमपि सकार-हकारसंयुक्तम्। यथा ह्सैँ, ह्स्क्लीँ ह्सह्सौँ इत्यादि विशेषा ज्ञेयाः। तथा सर्वत इत्यत्रापि श्लेषोऽस्ति। सरु इति विभक्तं पदम्। अत इति विभक्तं पदम्। अतो अस्माल्ललाटानन्तरं शिरसि क्लींकारः। सरु इति क्रियाविशेषणम्। सह रुणा रेफेण वर्तत इति सरु, उकार उच्चारणार्थः। एतेन क्लींकाराधोरेफः सिद्धः। सकार-हकार-संयोगस्तु पूर्वमेवोक्तः। एतेन स्क्लीँ इति कूटाक्षरं सिद्धम्। यदुक्तम्—

कान्तं भवान्तः कुललान्तवामनेत्रान्वितं दण्डिकुलं सनादम्।
षट्कूटमेतत् त्रिपुरार्णवोक्तमत्यन्तगुह्यं शिव एव साक्षात् ॥ १ ॥

इत्यादयः त्रिपुराविशेषाः कविहस्तिमल्लोक्तत्रिपुरासारसमुच्चयात् ज्ञेयाः।

यदि वा सरु इति सविसर्गं रेफमूलत्वाद् विसर्गाणां तेन ह्सौः इति सविसर्गं च आम्नायान्तरे ज्ञेयम्। अथ किमेषा 'त्रिपुरा' उत 'त्रिपुरभैरवी'? यथोत्तरषट्के शास्त्रे त्रिपुरामुद्दिश्योद्धारः कृतः।

अथातः संप्रवक्ष्यामि संप्रदायसमन्वितम्।
त्रैलोक्यडामरं मन्त्रं त्रिपुरायोगमुत्तमम् ॥ १ ॥

पुनस्तत्रैव

पूर्वं तु यन्त्रमालिख्य त्रिपुरावाचकं महत्।
अथातः संप्रवक्ष्यामि त्रिपुरायोगमुत्तमम् ॥ २ ॥

पञ्चरात्रे शास्त्रेऽपि 'त्रिपुरा त्रिपुरा' इति श्रूयते। तत्त्वसागरसंहितायां च एतैर्बीजाक्षरैः 'त्रिपुरभैरवी' इयं कथिता। यथा—

वाग्भवं प्रथमं बीजं द्वितीयं कुसुमायुधम्।
तृतीयं बीजसंज्ञं तु, तद्धि सारस्वतं वपुः ॥ १ ॥
एषा देवी मया ख्याता नित्या त्रिपुरभैरवी।

उत्तरषट्के—

एषा सा मूलचूलाद्या नाम्ना त्रिपुरभैरवी ॥ १ ॥

तत् कथमिदम्? इत्याह—सत्यम्। बहवोऽस्या उद्धारप्रकाराः संप्रदायाः पूजामार्गाश्च। तथा नारदीयविशेषसंहितायामुक्तम्—

वेदेषु धर्म्मशास्त्रेषु पुराणेष्वखिलेष्वपि।
सिद्धान्ते पञ्चरात्रे च बौद्धे आर्हतिके तथा ॥ १ ॥
तस्मात् सर्वासु संज्ञासु वाच्यैका परमेश्वरी।
शारदाशास्त्रे तथान्येषु संहिता मुनिभिः सुरैः ॥ २ ॥ इत्यादि।

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि गुप्तद्वारेण वासव।
विशेषस्त्ववगन्तव्यो व्याख्यातृगुरुवक्त्रतः ॥ १ ॥

इत्यतः क्वचिन्मन्त्रोद्धारभेदात्, क्वचिदासनभेदात्, क्वचित् संप्रदायभेदात्, क्वचित् पूजाभेदात्, क्वचिन्मूर्तिभेदात्, क्वचिद् ध्यानभेदात् बहुप्रकारा त्रिपुरैषा। क्वचित् त्रिपुराभैरवी, क्वचिद् नित्यत्रिपुराभैरवी, क्वचित् त्रिपुराभारती, क्वचित् त्रिपुरललिता, क्वचिदपरेण नाम्ना, क्वचित् त्रिपुरैवोच्यते। सर्वैः प्रकारैः फलदैव भगवती। यदाहुः—

न गुरोः सदृशो दाता न देवः शङ्करोपमः।
न कौलात् परमो योगी न विद्या त्रिपुरा परा ॥ १ ॥
न क्षान्तेः परमं ज्ञानं न शान्तेः परमो लयः।
न कौलात् परमो योगी न विद्या त्रिपुरा परा ॥ २ ॥
न पत्न्याः परमं सौख्यं न वेदात् परमो विधिः।
न बीजात् परमा सृष्टिर्न विद्या त्रिपुरा परा ॥ ३ ॥
दर्शनेषु समस्तेषु पाखण्डेषु विशेषतः।
दिव्यरूपा महादेवी सर्वत्र परमेश्वरी ॥ ४ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अस्याश्च जाप-होम-पूजा-साधन-ध्यान-न्यासासन-क्रिया-फलादिकं पृथक् पृथग् ग्रन्थेभ्यो ज्ञेयम् । यदाहुस्तत्तग्रन्थेषु—

न जापेन विना सिद्धिर्न होमेन विना फलम् ।
न पूजावर्जितं सौख्यं मन्त्रसाधनकर्म्मणि ॥ १ ॥
न ध्यानेन विना ऋद्धिर्न न्यासेन विना जयः ।
न क्रियावर्जितो मोक्षो मन्त्रसाधनकर्म्मणि ॥ २ ॥

यतो न सर्वं गुह्यमेकमुष्टया प्रदेयं गुरुभिरिति प्रथमवृत्तार्थः ॥ १ ॥

— त्रैपुरप्रथमबीजान्तर्भूतं बीजान्तरमाह—

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्द्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा
ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥ २

व्याख्या—हे भगवति ! त्रिपुरे ! इत्यामन्त्रणपदमध्याहार्यं सर्वत्र । त्रपुसीलता-तनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्धिनी या मात्रा प्रथमे तव वाग्बीजे स्थिता । ऐंकारे स्थिता । तां मात्राम् । ते वयं त्वद्भक्ता मन्महे । त्रपुसीलता उष्णकालेऽरघट्ट-घटीजलसिक्तक्षेत्रोत्पन्ना कर्कटी वल्ली तस्यास्तनवः सूक्ष्मा लसन्तः प्रसरन्तो ये तन्तवो गुणास्तेषां उत्थितिः प्रथमारम्भस्तं स्पर्द्धते अनुकरोति । नवोत्पन्नास्तन्तवो ह्यग्रे कुटिलाकारा भवन्तीत्यर्थः । ईदृशी या मात्रा ईकाररूपा सैव मात्रा हे भगवति ! तव वाग्बीजे ऐंकारे स्थिता तां मात्रां वयं मन्यामहे । अर्द्धमात्रामपि एकारवत् वाग्बीजतया आद्रियामहे इत्यर्थः । इयं कुण्डलिनी शक्तिर्भगवती विश्व-जननव्यापारबद्धोद्यमा । विश्वस्य जगतो जननं उत्पादनं तस्य व्यापारः कर्म्म तत्र बद्धोद्यमा कृतप्रयासा । चतुर्दशभुवनसृष्टिसावधाना त्रिपुरा इति ज्ञात्वा एवं प्रकारम् अवबुध्य नरा मनुष्या जननीगर्भे मातृकुक्षौ पुनरर्भकत्वं डिम्भरूपतां न स्पृशन्ति नानुभवन्ति । ऐरूपवाग्बीजमयपरमशक्तिध्यानादपि प्राप्तज्ञानमहानन्दा योगिनो मोक्षपदमेवाप्नुवन्ति । न च संसारे दुःखभाण्डागारे भूय उत्पद्यन्त इति भावार्थः ॥ २ ॥

अज्ञातोच्चारितस्याप्येतस्य बीजपदस्य प्रभावातिशयमाह—

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा ऐ ऐ इति व्याहृतं
येनाकूतवशादपीह वरदे ! बिन्दुं विनाऽप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि ! तरसा जाते तवाऽनुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्राम्बुजात् ॥ ३

व्याख्या—हे वरदे ! मनोभिलषितवरदानदक्षिणे ! इह जगति संभ्रमकारि आश्चर्यकारणं वस्तु पदार्थं सहसाऽकस्माद् दृष्ट्वा विलोक्य, येन केनापि पुरुषेण, आकूतवशादपि भयाभिप्रायादपि ऐ ऐ (ई ई—पाठान्तरम्) इति बिन्दुं विनापि अनुस्वारवर्जितमक्षरं व्याहृतमुच्चारितम्, तस्यापि भयेन ऐ (ई—पा०) इति उच्चारकस्य पुरुषस्य ध्रुवमेव निश्चितमेव हे देवि ! भगवति ! तरसा बलेन विद्यापाठं विनापि तवानुग्रहे त्वत्प्रसादे जाते सति, ध्यातुर्वक्राम्बुजात् मुखकमलात् सुधा-रसद्रवमुचोऽमृतरसनिर्यासरूपा वाचो वाण्यो निर्यान्ति निर्गच्छन्ति । सार्थकत्वाद् वचनानाममृतोपमत्वम् । यद्यपि च रस-द्रवयोरेकार्थता, तथाप्यत्र विशेषः । अमृतं हि देवभोज्यं रसरूपमेव भवति । तस्यापि द्रवः सारोद्धारो निर्यास इत्यर्थः । अयमभिप्रायः—प्राणी यदि किमप्यपूर्वपदार्थावलोकेऽपि संभ्रान्तचेता ऐ (ई—पा०) इत्यक्षरमुच्चारयति, एतावद्बीजाक्षरोच्चारणमात्रसंतुष्टभगवतीप्रसादादविरल-विगलदमृतलहरीपरिपाकपेशला वाणीविलासाः प्रसरन्तीति काव्यार्थः ॥ ३ ॥

द्वितीयबीजाक्षरेऽप्यंशगतं बीजान्तरमाह—

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं
तत् सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद् बुधश्चेद् भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्त्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पदं प्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥ ४

व्याख्या—हे नित्ये ! सकलकालकलाव्यापिशाश्वतस्वरूपे भगवति ! यत् तव भवत्या अपरं द्वितीयं मन्त्राक्षरं 'कामराजं' कामराजनामकं क्लींकाररूपं, तदपि किंभूतं ? निष्कलं शुद्धकोटिप्राप्तं तद् बीजं सारस्वतमिति भुवि पृथिव्यां कश्चिदेव विरलो बुधो विचक्षणोऽवैति जानीते विचारयति । प्रसिद्धबीजमपि विरलो जानातीति कथने कवेरिदमाकूतम्—निष्कलमिति निर्गतककार-लकाराक्षरं तेन ई इति सिद्धम् । अपरमिति च । अपगतरेफमाम्नायान्तरे ज्ञेयम् । ईदृशं च गूढाक्षरं विरल एव वेत्ति । यतः—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥ १ ॥ इतिवचनात् ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अस्यैवाक्षरस्य स्थापकमाह — आख्यानमिति । यन्मन्त्राक्षरं प्रतिपर्व अमावास्यायां पूर्णिमायां वा सत्यतपसो नाम्नो ब्रह्मर्षेराख्यानं दृष्टान्तं कीर्तयन्तः कथन्तः सम्बन्धेन व्याख्यानयन्तो द्विजा ब्राह्मणाः, आरम्भे कथाकथनप्रारम्भे, प्रणवास्पदं प्रणयितां नीत्वा उच्चरन्ति — प्रणव ॐकारस्तस्यास्पदं स्थानं तत्र प्रणयः सम्बन्धः सोऽस्यास्तीति मत्वर्थीयप्रत्ययान्तपदम् । तद्भावस्तत्ता । यदेवाक्षरं सत्यतपसो मुनेः पर्वाध्यायं श्रावयन्तो विप्रा आदौ पठन्ति तदेव मन्त्राक्षरमित्यर्थः । ॐकारश्च सर्ववैदिकपाठेषु मङ्गलार्थतयाभीष्ट एव । यदाहुः —

ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
भित्त्वा गलौ विनिष्क्रान्तौ तेनोभौ मङ्गलाविमौ ॥ १ ॥

अतो यथा यत्र पाठे ईकारोऽस्ति तत्पाठश्चायम् — ई । हिमवतोढपादेषूत्तरे पुष्पभद्रा नाम नदी । तस्याः तीरे पुष्पभद्रो नाम वटः । तत्र सत्यतपा ऋषिः तपोऽतप्यत । एतदक्षरोच्चारणे च तस्य महर्षेः अमुं हेतुमाह प्राचीना मुनयः । तस्य किल ब्रह्मर्षेः कानने निराहारं तपः समाचरतो निष्ठुरतरशरप्रहारभरजर्जरीकृतकलेवरं चीत्कारबधिरितदिगन्तरं वरं वराहमालोक्य परमकारुण्यात् तत्कालं आक्रान्तयेव तत्पीडया मुखकमलात् ई इत्यक्षरं विनिर्गतम् । अनन्तरं तत्पृष्ठत आगतेनाधिज्यकार्मुकेन व्याधेन पृष्टम् — भगवन् ! मदीयनाराचहतः शूकरः केन वर्त्मना गतः ? पीड्यते बुभुक्षया मत्कुटुम्बं सर्वम् । तद् निवेदय दयानिधे !' दृष्टमिति कथने असत्यभाषणम्, सत्यकथने च परपीडा । तदिदमुभयविरुद्धमापतितमिति चिन्ताशतव्याकुलितस्य परलोकभीरोर्मुनेः ईकाररूपसारस्वतबीजोच्चारणमात्रसंतुष्टा सरस्वती मुखेऽवतीर्य सत्यं हितं च वचनमुच्चचार । तद्यथा —

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति ।
अहो व्याध ! स्वकार्यार्थी किं पृच्छसि मुहुर्मुहुः ? ॥ १ ॥

एतत्संप्रदाया ब्राह्मणा अद्यापि पर्वाध्यायादौ सारस्वतं परममितीदमक्षरमुच्चारयन्ति सानुनासिकमिति वृत्तार्थः ॥ २ ॥

तृतीयबीजेऽपि विशेषाम्नायानुप्रवेशमाह —

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधै-
स्तार्तीयीकमहं नमामि मनसा तद्बीजमिन्दुप्रभम् ।
अस्त्वौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गौःशब्दो गिरि वर्त्तते स नियतं योगं विना सिद्धिदः ॥ ५

व्याख्या — तार्तीयीकं तृतीयमिन्दुप्रभं शशाङ्कधवलं तद्बीजं पूर्वनिर्दिष्टं ह्सौंरूपमहं नमामि । यद्बीजं वाचां प्रवृत्तिकरणे वचनपाटवे बुधैः सचेतनैः सद्यो दृष्टप्रभावं तत्क्षणमुल्लसत्प्रत्ययबीजम् । एकाक्यपि त्रैपुरस्य तृतीयं बीजं चन्द्रशुभ्रं ध्यातं सत् परमं सारस्वतमित्यर्थः । यदि वा — अहमिति न विद्यते हकारो यत्र तद् अहं हकाररहितं सौं इति एतदपि शारदं बीजं ज्ञेयम् । यदुक्तम् —

जीवः दक्षिणकर्णस्थं वाचया च समन्वितम् ।
एतद् सारस्वतं सद्यो वचनस्योपकारकम् ॥ १ ॥

जीवं सकारः, दक्षिणकर्ण औकारः, वाचा विसर्गः — इत्यादिसंज्ञा कौलमातृकातो ज्ञातव्या । उत्तरार्द्धेन सप्रभावं त्रैपुरं बीजान्तरमप्याह — और्वोऽपि वडवानलोऽपि, सरस्वतीं नाम नदीं अनुगतो मिलितो जाड्याम्बुविच्छित्तये भवति जाड्यजलसंशोषणाय स्यात् । तत् त्वं तु अस्त्वौरिति — अस्, तु, औरिति पदत्रयम् । न विद्यते सकारो यत्र तत् अस् सकारवर्जितम् । तु पुनरर्थे । तेन औरिति केवलं सिद्धम् । एतदपि बीजाक्षरं ज्ञेयम् । ततश्च यो युष्माकम् । सरस्वतीमनुगतः सारस्वतबीजतां प्राप्तः, औरपि जाड्याम्बुविच्छित्तये भवत्विति व्याख्येयम् । अयमभिप्रायः — यथा किल सरस्वतीनाममात्रसाम्यापन्ननदीसंपर्काद् वडवाग्निरपि जाड्यं छिनत्ति, तथेदमप्यक्षरं सारस्वतबीजत्वादज्ञानमुद्रापहारकमिति युक्तो न्यायः । एतस्यैव स्थापकमाह — गौरिति गोशब्दो गिरि वाण्यां वर्त्तते ।

स्वर्गे दिशि पशौ रश्मौ वज्रे भूमाविषौ गिरि ।
विधायके जले नेत्रे गोशब्दः परिकीर्त्तितः ॥ १ ॥

इत्यनेकार्थवचनात् । स गोशब्दोऽगं गकारं विना सिद्धिदः सारस्वतसिद्धिप्रदः । तत औ रेत्यवशिष्यते । इदम् औरिति बीजाक्षरम्, योगं होमध्यानकुसुमजापक्रियां विना फलतीति आवृत्तिव्याख्यानं ज्ञेयम् । अस्मिन् पदद्वयेऽपि एकमेव बीजपदमुक्तमिति न पुनरुक्तमाशङ्क्यम् । यतोऽस्त्वौर्वोऽपीत्यत्र सविसर्गं सानुनासिकं बीजम्, इतरत् सविसर्गमित्ययं विशेष इति पद्यार्थः ॥ ५ ॥

साम्नायं संग्रहमाह —

एकैकं तव देवि ! बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफलीकरोति तरसा तं तं समस्तं नृणाम् ॥ ६

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

व्याख्या—हे देवि ! भगवति ! एकैकं एकमेकमनघं निर्दूषणं तव बीजं न्त्राक्षरम्, यं यं काममभीष्टमर्थमपेक्ष्याश्रित्य येन केनापि विधिना चिन्तितं मृतम्, वा अथवा, जप्तं पौनःपुण्येन चिन्तितं सद्, इदं बीजं नृणां ध्यातृपुरुषाणां तं समस्तं मनोरथं तरसा वेगेन सफलीकरोति पूरयति । बीजप्रकारबाहुल्य-विशेषणमन्याह—किंविशिष्टं बीजम् ? सव्यञ्जनाव्यञ्जनम् । सह व्यञ्जनेन वर्णेन वर्त्तते सव्यञ्जनम्, न विद्यते व्यञ्जनं यत्र तद् अव्यञ्जनं केवलस्वरमयम् । ततः समाहारद्वन्द्वः । तत्र सव्यञ्जनं मूलाम्नायरूपम्, अव्यञ्जनं च 'ऐ, ई, औ' इति बीजपदानि । एतान्यपि रहस्यरूपाणि ज्ञेयानि । यदाह त्रिपुरासारः—

शिवाष्टमं केवलमादिबीजं भगस्य पूर्वाष्टमबीजमन्यत् ।
परं शरौंतं कथिता त्रिवर्णा सङ्केतविद्या गुरुवक्त्रगम्या ॥ १ ॥

तथा कूटस्थमनेकाक्षरसंयोगजं बीजम् । यथा 'ह्सैँ ह्सक्लीँ ह्सौँ महाभैरवी नमः ।'[1] पट्टे कुङ्कुमगोरोचनाचन्दनकर्पूरैर्मन्त्रं लिखित्वा बद्धस्य नामोपरि बन्धकस्याऽधो दत्त्वा रक्तपुष्प १०८ दिन ८ जापात् बन्दिमोक्षः । यदि वा भूर्ये लिखित्वा दिन ३ रक्तपुष्प १०८ जापं कृत्वा बद्धस्याञ्चले बन्धयेदवश्यं मोक्षः इति । यदि वा पृथक् एकैकं बीजम्, न च मिलितं बीजत्रयमेव सारस्वतं किंतु एकैकाक्षरमपीति रहस्यम् । यदाहुः श्रीपूज्यपादशिष्याः—

कान्तादिभूतपदगैकगतार्द्धचन्द्र-दन्तान्तपूर्वजलधिस्थितवर्णयुक्तम् ।
एतज्जपन्नरवरो भुवि वाग्भवाख्यं वाचां सुधारसमुचां लभते स सिद्धिम् ॥ १ ॥
कान्तान्तं कुलपूर्वपञ्चमयुतं नेत्रान्तदण्डान्वितं
कामाख्यं गदितं जपान्मनुरयं साक्षाज्जगत्क्षोभकृत् ।
दन्तान्तेन युतं तु दण्डि सकलं संक्षोभणाख्यं कुलं
सिध्यत्यस्य गुणाष्टकं खचरतासिद्धिश्च नित्यं जपात् ॥ २ ॥

अन्यच्च क्रमगतं क्रमेण परिपाट्या लोकप्रसिद्धया शिवशक्तिसंयोगरूपया स्थितम् । यथा ह्सैँ ह्सक्लीँ ह्सौँ इति । यथा व्युत्क्रमात् वैपरीत्येन विपरीतरता-भियोगेन स्थितम्—शक्त्याक्रान्तं शिवबीजमित्यर्थः । यथा स्हैँ स्हक्लीँ स्हौँ इति । यदाहुः श्रीजिनप्रभसूरिपादा रहस्ये—'पुंसो वश्यार्थं शिवाक्रान्तं शक्तिबीजं रक्तध्यानेन ध्यायेत्, स्त्रियास्तु वश्यार्थं शक्त्याक्रान्तं शिवबीजं ध्यायेदिति । त्रिपुरासारोऽप्याह—

शिवशक्तिबीजमत एव शम्भुना निहितं द्वयोरुपरि पूर्वबीजयोः ।
अकुलं परोपरि च मध्यमाधरे दहनं ततः प्रभृति सोर्जिताऽभवत् ॥ १ ॥

1 'मन्त्रोऽयम् ।' इति टिप्पनकम् ।

भैरवीयमु[...]ा कुलपूर्वा दैशिकैर्यदि भवेत् कुलपूर्वा ।
सैव शीघ्र[...]दा भुवि विद्येत्युच्यते पशुजनेष्वति गोप्या ॥ २ ॥ इति ।

किंचित् क्रम-व्युत्क्रमयोः प्रकारान्तरमप्यस्ति । यथा—क्रमो वाग्बीज-कामबीज-प्रेतबीजक्रमा[...] । व्युत्क्रमश्च काम-वाक्-प्रेतबीजक्रमेण वा, काम-प्रेत-वाग्बीजक्रमेण वा, प्रेत-वाक्-कामबीजक्रमेण वा, प्रेत-काम-वाग्बीजक्रमेणवेति । यदुक्तं पूज्यैः—

आद्यं बीजं मध्यमे मध्यमादावन्त्यं चादौ योजयित्वा जपेद् यः ।
त्रैलोक्यान्तःपातिनो भूतसंघा वश्यास्तस्यैश्वर्यभाजो भवेयुः ॥ १ ॥
आद्यं कृत्वा चावसानेऽन्त्यबीजं मध्ये मध्ये चादिमं साधकेन्द्रः ।
सद्यः कुर्याद् यो जपं जापमुक्तौ जीवन्मुक्तः सोऽश्नुते दिव्यसिद्धीः ॥ २ ॥

इत्यादि स[...]ीजलभ्यविशेषफलानि तत्तद्ग्रन्थेभ्यो ज्ञेयानि । अतएवोक्तम्—यं यं कामं वश्या[...]कृष्टिपौष्टिकस्तम्भवृद्धिविद्वेषणमारणोच्चाटनशान्त्यादिकं ध्याता अभिप्रैति, एतेषां [ब]ीजानां प्रभावात् सर्वं सफली भवतीति संक्षिप्तो वृत्तार्थः ॥ ६ ॥

अथ प्रस्तुत[स]ारस्वतसिद्ध्यर्थं ध्येयविभागमाह—

वामे पुस्त[क]धारिणीमभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो [वर]दानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भाम्बु[ज]पत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं
ये त्वामम्ब ! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥ ७

व्याख्या—वामे हस्ते पुस्तकधारिणीम् । द्वितीये च वामे करे अभयदां सर्व-जीवाभयदानदक्षा[म्] । तथा दक्षिणे पाणौ सह अक्षस्रजा जपमालया वर्त्तत इति साक्षस्रजम् । अन्य[च्च] द्वितीये दक्षिणे करे वरदानपेशलकराम्—'कविर्भव, वाग्मी भव, लक्ष्मीवान् [भ]व'—इत्यादिवरदानदुर्ललिताम् । कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम्—घनसार-कुन्दपुष्पधवलां [त]ाम् । हे अम्ब ! हे मातः ! हे भगवति ! ये पुरुषा मनसा चित्तशुद्ध्या, न शीलयन्ति नाराधयन्ति तेषां कुतः कवित्वम् ? त्वत्प्रसादापेक्षिणी कवित्वश[...]रिति । पुनस्तामेव विशेषयन्नाह—उज्जृम्भेति । उज्जृम्भं विकसितं यदम्बुजं कमलं तस्य पत्रं पर्णं तद्वत् कान्ते शुभ्रत्व-विशालत्वगुणवर्ण्ये ये नयने नेत्रे, तयोः स्निग्धा विशेषदीप्ता या प्रभा कान्तिस्तया लोकत इत्येवं शीला ताम् । प्रसन्नदृष्टिता हि प्रसादाभिमुखीभावलिङ्गम् । यदुक्तम्—

रुट्ठस्स [...] दिट्ठी उप्पलधवला पसन्नचित्तस्स ।
कुवियस्स [...]म्मिलायइ गंतुमणस्सूसिया होइ ॥ १ ॥ इति ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

चतुर्भुजत्वाद् भगवत्याः पुस्तकाभयदानाक्षमालावरेण्यप्रकरत्वं युक्तम् । एवंभूता भगवती कवित्वसिद्धये ध्येयेति वृत्तार्थः ॥ ७ ॥

निरङ्कुशवक्तृत्वशक्तये विशेषोपदेशमाह –

ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्तं विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजात्
तेषां भारति भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्म्मिभिः ॥ ८

व्याख्या – हे भारति ! पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां श्वेतकमलराशिदीप्तमनोज्ञकान्तिम्, अमृतद्रवैः सुधारसैरिव शिरो मस्तकं सिञ्चन्तीम्, मूर्ध्नि स्थितां मस्तकोपरि श्वेतच्छत्रमिव स्थिताम्, त्वां ये पुरुषा ध्यायन्ति स्मरन्ति तेषां वक्त्राम्बुजात् मुखकमलादश्रान्तं निरन्तरं भारती वाणी निर्गच्छति । किंरूपा ? विकटस्फुटाक्षरपदा – विकटानि उदाराणि स्फुटानि प्रकटार्थानि अक्षराणि येषु, एवंभूतानि पदानि वाक्यरचना यस्याः सा । ईदृशी सालङ्कारा सुललिता विदग्धस्पृहणीया गीरुल्लसति । कथमित्याह – सुरसरित्कल्लोललोलोर्म्मिभिः सुरसरिद् गङ्गा, तस्याः कल्लोला नीरसंभारोल्लासिन्यो लहर्य्यः, तद्वल्लोलाश्चञ्चला या ऊर्म्मयः सावर्त्तपयःप्रवाहरूपास्ताभिः । भीमकान्तगुणत्वात् पुरुषस्य केचित् तर्कादिवचनोपन्यासाः कल्लोलैरुपमीयन्ते । शान्तधर्म्मशास्त्रोपदेशाश्चोर्म्मिभिरित्येकार्थपदद्वयोपादानं संततक्षरदमृतबिन्दुशतस्नातस्वात्मध्यानात् परमा कवित्व - वक्तृत्वशक्तिरिति पूर्वकाव्याद् विशेष इति । वक्त्राम्बुजादित्यत्र जातिव्यपेक्षया एकवचनमिति वृत्तार्थः ॥ ८ ॥

धर्म्मपुरुषार्थमुक्त्वा कामपुरुषार्थसिद्धये ध्यानविशेषमाह –

ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमा-
मुर्वीं चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव ।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-
क्लान्तास्त्रस्तकुरङ्गशावकदृशो वश्या भवन्ति स्त्रियः ॥ ९

व्याख्या – हे भगवति ! त्वत्तेजसा तव शरीरकान्त्या ये ध्यातारः क्षणमपि अनन्यमनस एकाग्रचित्ताः, इमां द्यां सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां पश्यन्ति । इदमाकाशं सिन्दूररेणुपटलव्याप्तं ध्यानभङ्ग्या प्रत्यक्षमिव विलोकयन्ति । उर्वीं पृथ्वीं च यावकरसप्रस्तारमग्नामिव गलदलक्तकद्रवबिन्दुमेदुरामिव ये पुरुषाः क्षणमप्यनन्यमनसो ध्यायन्ति । अनन्यमनस इति पदमुभयत्रापि डमरुकमणिन्यायेन प्रयोज्यम् । तेषां कामातुररसिकानाम्, अनङ्गज्वरक्लान्ताः कन्दर्पार्त्तिपीडिताः, त्रस्तकुरङ्गशावकदृश उत्रस्तमृगबालकचञ्चलदृष्टयः, स्त्रियो नायिकाः, वश्या भवन्ति रागपरवशा जायन्ते भगवतीरूपस्मरणमात्राधिरूढरक्तध्यानपरमकोटिसंटङ्केन शक्तिवेध इत्यर्थः । यदुक्तं कामरूपपञ्चाशीतिकायाम् –

सिन्दूरारुणतेयं जं जं चिंतेइ तरुणसंकासं ।
तडित्तरलतेयभासं आणइ दूरट्ठिया नारी ॥ १ ॥
सिन्दूरारुणतेयं तिकोणं बंभगंठिमज्झत्थं ।
इय रागेण व कुणइ वसं अमरवहूसिद्धसंघायं ॥ १ ॥

अन्यत्राप्युक्तम् –

पीतं स्तम्भेऽरुणं वश्ये क्षोभणे विद्रुमप्रभम् ।
अभिचारेऽञ्जनाकारं विद्वेषे धूमधूमलम् ॥ ३ ॥ इति वृत्तार्थः ॥ ९ ॥

अर्थसारत्वाज्जगतोऽतः पुरुषार्थसारामर्थसिद्धिमाह –

चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरामाबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थिरम् ।
तेषां वेश्मनि विभ्रमादहरहः स्फारी भवन्त्यश्चिराद्
माद्यत्कुञ्जरकर्णताल तरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥ १०

व्याख्या – हे भगवति ! ये पुमांसः क्षणमपि निमेषमात्रमपि तद्गते चेतसि स्थिरां कृत्वा तन्मयतया चित्ते निवेश्य, चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरां देदीप्यमानसौवर्णकर्ण्णकुण्डलबाहुरक्षकाम्, तथा आबद्धकाञ्चीस्रजं निबद्धमेखलां त्वां भगवतीं ध्यायन्ति स्वात्मानं तन्मयमिव स्मरन्ति, तेषां निस्तुषभागधेयानां वेश्मनि गृहे विभ्रमादौत्सुक्येन अहरहर्दिने दिने स्फारी भवन्त्यो विस्तारं प्राप्नुवन्त्य उत्तरोत्तरं वर्द्धमानाः, माद्यत्कुञ्जरकर्ण्णतालतरलाः – मदोन्मत्तगजकर्ण्णचञ्चलाः श्रियो लक्ष्म्यश्चिरात् चिरकालं स्थैर्यं भजन्ते स्थिरीभूय तिष्ठन्ति । पीतध्यानस्य लक्ष्मीमूलत्वात् । यदुक्तम् –

[illegible]उहलियतेयसिहिणा कालानलकोडिपुंजसारिच्छा ।
झाइज्जइ नासग्गे पाविज्जइ सासया रिद्धी ॥ १ ॥
कुंभकुडीए कुम्मो पीडिज्जंतो वि कणयसंकासो ।
थंभइ जलजलणतुरगगयचक्कं भाविदो नूणं ॥ २ ॥

अतस्तप्तकाञ्चनसच्छायध्यानान्निरवधिनिधिसमृद्धिभाजनं ध्याता भवतीति श्लोकार्थः ॥ १० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

ध्येयध्यानताद्रूप्यमाह—

आर्भट्या शशिखण्डमण्डितजटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं
मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं त्वद्रूपसंपत्तये ॥ ११

व्याख्या—शशिखण्डमण्डितजटाजूटां चन्द्रकलालङ्कृतमौलिं नृमुण्डस्रजं कपालमालधारिणीम्, बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां जपापुष्परक्तवस्त्राम्, चतुर्भुजां बाहुचतुष्टयवतीम्, त्रिनयनां त्रिनेत्राम्, आपीनतुङ्गस्तनीं समंतात् पृथुलोच्चकुचाम्, मध्ये नाभेरधो निम्नवलित्रयाङ्किततनुं न्यञ्चत्रिवलीतरङ्गां त्वां भगवतीं त्वद्रूपसंपत्तये ध्यायन्ति । सर्वसिद्धिमयत्वद्रूपप्राप्तये त्वामेव स्मरन्ति योगिन इति । पुनः किंभूताम्? प्रेतासनाध्यासिनीमिति—प्रेतासनं ह्सौबीजं तदध्यास्ते । ताच्छील्ये णिन् । यदाह—देवीजन्मपटले त्रिपुरासारः—

तत्कर्णिकोपरिकपञ्चममम्बुतुर्ययुक्तं मनुस्वरतदन्तर्युतं निधाय ।
प्रेतं धिया तदुपरि त्रिदशेन्द्रवन्द्यां ध्यायेत् त्रिलोकजननीं त्रिपुराभिधानम् ॥ १ ॥

इति । कथं स्मरन्तीत्याह—आर्भट्या उद्धतया वृत्त्या । भारती-सात्त्वती-कैशिकीप्रमुखवृत्तयो हि शान्ताः । आर्भटीवृत्तिस्तु वीररसाश्रया । यदाह—सरस्वतीकण्ठाभरणालंकारे श्रीभोजराजः—

कैशिक्यारभटी चैव भारती सात्त्वती परा ।
मध्यमारभटी चैव तथा मध्यमकैशिकी ॥ १ ॥
सुकुमारार्थसंदर्भा कैशिकी तासु कथ्यते ।
या तु प्रौढार्थसंदर्भा वृत्तिरारभटीति सा ॥ २ ॥
कोमलप्रौढसंदर्भा कोमलार्था च भारती ।
प्रौढार्था कोमलप्रौढसंदर्भा सात्त्वतीं विदुः ॥ ३ ॥
कोमलौ प्रौढसंदर्भौ बन्धौ मध्यमकैशिकीम् ।
प्रौढार्था कोमले बन्धे, मध्यमारभटीष्यते ॥ ४ ॥

उदाहरणानि तत एवावगन्तव्यानि । 'आर्भटी'-'आरभटी'शब्दविशेषस्तु वर्षा-वरिषादिशब्दवद् न दोषः । अतः सोद्धतजापेन भगवत्या निर्मलस्फटिकसंकाशमानसो ध्यानी मनीषितां सिद्धिं लभते । न च मुत्कलनिष्पङ्कचित्तस्य ध्यातुर्दुष्करं किमपि । यदुक्तम्—

१ "ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः । पञ्चैते च महाप्रेताः पादमूले व्यवस्थिताः ॥ १ ॥ इति प्रत्यन्तरे टिप्पनकम् ।

चित्ते बद्धे बद्धो मुक्के मुक्को य नत्थि संदेहो ।
विमलसहावो अप्पा मइलिज्जइ मइलिए चित्ते ॥ १ ॥ इत्यर्थः ॥ ११ ॥

अमुमेवार्थं दृष्टान्तेन दृढयन्नाह—

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभृतां सामान्यमात्रे कुले
निःशेषावनिचक्रवर्त्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभवद्
देवि ! त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः ॥ १२

व्याख्या—हे देवि ! क्षितिभृतां राज्ञां अल्पपरिच्छदे स्तोकपरिवारे सामान्यमात्रे अनुत्कृष्टे कुले जातोऽपि लब्धजन्मापि, वत्सराजो नाम सामान्यनृपः, यद् यस्मात् कारणान्निःशेषावनिचक्रवर्त्तिपदवीं लब्ध्वा अखण्डमहीमण्डलसार्वभौमतां प्राप्य, प्रतापोन्नतः शत्रुच्छेदकृत्कीर्त्तिश्रेष्ठः, तथा विद्याधरवृन्दवन्दितपदः खेचरचक्रचर्चितचरणो अभवद् बभूव । सोऽयं सर्वोऽपि प्रसादोदयः त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः—तव पादकमलनमस्कारसंभूतोऽनुभावोऽयम् । किलायं वच्छराजनामा नृपः सामान्योऽपि यदकस्मादनेकनरनायकमुकुटकोटितटघृष्टपादो जातः, स निश्चितं पूर्वमन्योक्तव्यक्तभगवतीरूपानुध्यानसंभव एव प्रसादातिशय इति भावः ॥ १२ ॥

भगवत्या एव पूजामाहात्म्यमाह—

चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते बिल्वीदलोल्लुण्टन-
त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितै-
र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥ १३

व्याख्या—हे चण्डि ! भगवति ! त्वच्चरणाम्बुजार्च्चनकृते तव पादकमलपूजार्थे येषां पुरुषाणां करा हस्ता बिल्वीदलोल्लुण्टनत्रुट्यत्कण्टककोटिभिः बिल्वपत्रत्रोटनलग्नकण्टकाग्रैः परिचयं संपर्कं न जग्मुर्न गताः, ते पुमांसो दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितैरेतल्लक्षणलक्षितैरम्भोजप्रभैः कमलकोमलैः पाणिभिः करै उपलक्षिताः पृथिवीभुजो नरेन्द्राः कथमिव जायन्ते । ये श्रीफलतुलसीपत्रधत्तूरकादिपुष्पैः भगवतीं नार्चयन्ति ते कथं यथोक्तलक्षणा राजानो भवन्तीत्यर्थः । तत्र दण्डो गदा, चापं धनुः, कुलिशं वज्रं, श्रीवत्सश्चक्रवर्त्यादिहृदयचिह्नम् ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अङ्कुश-चक्र-मत्स्याः प्रसिद्धाः । एतानि च लक्षणानि सार्वभौमानामेव भवन्ति । यत् सामुद्रिकम् –

पद्मं वज्राङ्कुशं छत्रं शंखमत्स्यादयस्तले ।
पाणिपादेषु दृश्यन्ते यस्यासौ श्रीपतिः पुमान् ॥ १ ॥

इत्यादि ज्ञेयम् । पूजां विना च न प्रौढसमृद्धिः । यदुक्तं महादेवपूजाष्टके –

पूजया विपुलं राज्यमग्निकार्येण संपदः । इति ।

न पूजावर्जितं सौख्यमिति प्रथमकाव्येऽपि भणनाच्च । चण्डीत्यामन्त्रणं न सुखाराध्या भगवतीति रौद्रशब्दोपादानमिति काव्यार्थः ॥ १३ ॥

पूजाफलमुक्त्वा होमफलमाह –

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वैक्षवै-
स्त्वां देवि ! त्रिपुरे ! परापरकलां संतर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृता ॥ १४

व्याख्या – हे देवि ! हे त्रिपुरे ! विप्रा ब्राह्मणाः, क्षोणिभुजः क्षत्रियाः, विशो वैश्याः, तदितरे शूद्राः, अमी चातुर्वर्ण्या लोकाः, परापरकलां प्राचीनार्वाचीनावस्थामयीं त्वां भगवतीं पूजाविधौ पूजावसरे क्षीराज्यमध्वैक्षवैः (पाठान्तरेण 'क्षीराज्यमध्वासवैः') दुग्धघृतमाक्षिकेक्षुरसैः संतर्प्य प्रीणयित्वा, त एव ब्राह्मणक्षत्रियादयः, तरसा बलेन विघ्नैरविघ्नीकृता उपद्रवैरबाधिताः संतः, तां तां मनीषितां वश्याकृष्टिराज्यादिकां सिद्धिमवाप्नुवन्ति लब्धिं लभन्ते । यां यां सिद्धिं स्थिरधियां तदैकाग्र्यवतां तेषां द्विजादीनां मनः प्रार्थयते चित्तं चिन्तयति, तामेव सिद्धिं लभन्त इत्यर्थः । अयं भावः – ये किल षट्कोणे[1] वृत्ते योन्याकारेऽर्द्धचन्द्राकारे वा हस्तोण्डे कुण्डे शोधनं क्षालनं पावनं शोषणं च कृत्वा, परितो हरेशक्रा[2]दीन् देवान् न्यस्य, मध्ये कुशाम्भसाऽभ्युक्ष्य, पुष्पगन्धाद्यैः संपूज्य, ततः परे[3]धेयदेवतां ध्यात्वा, सूर्यकान्तादरणिकाष्ठात् श्रौत्रियागाराद्वा वह्निमाहृत्य, हैमे शौल्वे मृन्मये वा पात्रे निधाय वह्निं प्रतिष्ठामन्त्रेण न्यस्य, हृदयमन्त्रेण सप्तघृताहुतीर्दत्वा, कार्यानुसारेण रक्तातिरक्ताकनकाहिरण्याद्याः सप्तजिह्वाः परिकल्प्य, संप्रोक्षणं मन्त्रं शुभं वर्णावर्त्तशब्दादिकं विचारयन्तः पूर्णाहुतिपर्यन्तं दक्षिणभागस्थ-

१ 'षट्कोणे चतुःकोणे वृत्ते ।' प्र० पा० । २ °हरि° इति पा० । ३ 'तत्र धेय°' इति पा० ।

दधिदुग्धादीनां चुलुकं चुलुकं जुह्वति, तेषां प्रीता भगवती सर्वसिद्धिं संपादयति । अग्निप्रतिष्ठामन्त्रश्चायम् –

'मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तमोत्वरिष्टम् ।
यज्ञांशमिमं दधातु विश्वे देवाः स इह मादयन्तां मां प्रतिष्ठेति ॥
विस्तरस्त्वस्य गुरुमुखाद् ज्ञेयः । इति वृत्तार्थः ॥ १४ ॥

भगवत्या एव सर्ववाङ्मयदैवतमयत्वमाह –

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति ध्रुवम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरतौ ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे ॥ १५

व्याख्या – हे त्रिपुरे ! अत्र भुवने चतुर्दशात्मके, शब्दानां रूढि-यौगिक-भेदभिन्नानां नाम्नाम्, जननी उत्पादयित्री त्वम् । अतो वाग्वादिनी त्वमेवोच्यसे कथ्यसे । वाचो वाणीर्वदतीत्येवंशीलेति व्युत्पत्तेः । एतावता सर्वशास्त्राणि त्रिपुरात एव प्रादुर्भूतानि ज्ञेयानि । न तु यथा बौद्धानाम् –

तासेन् ध्यानसमापन्ने चिन्तारत्नवदास्थिते ।
निःसरन्ति यथा कामं कुड्यादिभ्योऽपि देशनाः ॥ १ ॥

इत्यादि । अतो वेद - सिद्धान्त - व्याकरण - काव्य - छन्दोऽलंकारादिशास्त्राणि भगवतीरूपाण्येवेति । अन्यच्च – ध्रुवं निश्चितं केशव - वासवप्रभृतयो हरि - हर - ब्रह्मप्रमुखा इन्द्रयमवरुणकुबेराग्नेयनैर्ऋतवायव्येशानप्रमुखाश्च देवास्त्वत्तः प्रादुर्भवन्ति, भगवत्याः सकाशादेवोत्पद्यन्ते । यतः सृष्टिवृष्टिपालनज्वालनज्ञानदानबीजाधानादितत्तद्देवानियेयकार्याणां भगवत्या एवोत्पादात्, तेऽपि तन्मया एवेति । तथा कल्पविरतौ क्षयकाले तेऽपि ब्रह्मादयो जगदुत्पत्तिस्थितिनाशक्षमा देवा यत्र भवत्यां लीयन्ते । युगान्तरे हि सवद्रव्यव्याकरणप्रलयलीलया तवैवावस्थानात् सर्वेऽपि देवा महामायारूपां त्वामेवानुप्रविशन्ति ।

उपसंहारमाह – सा त्वं त्रिपुरा काचिदनिर्वचनीया अचिन्त्यरूपमहिमा अलक्ष्यस्वरूपा परा शक्तिः गीयसे, परमशक्तिः कथ्यसे । ननु शक्तेरपि शिवात्मकत्वात् तन्नाशे तस्या अपि नाशः । इति चेन्न । शिवव्यतिरिक्तायाः शक्तेः परमार्थमयत्वात् । यदुक्तम् –

सिवसत्तिहि[1] मेलावडउ यहुं[2] पसुआंहहइ[3] होइ ।
भिन्नी सत्ति[4] सिवाह विणु विरलउ बूझइ कोइ ॥ इति गर्भार्थः ॥ १५ ॥

१ 'शिवशक्तिहिं हे' । २ 'इहु' । ३ 'पसुवाहइ' । ४ 'शकतिशिवाह' – इति पाठभेदाः प्रत्यन्तरे ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

त्रिपुरेति नामप्रत्ययेन त्रयात्मकसर्ववस्तूनां भगवत्या सह साल्यमाह –

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथ त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ।
यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥ १६

व्याख्या – देवानां ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराणां त्रितयं त्रिसंख्यात्मकता। यदि वा देवशब्देन गुरवस्तेषां त्रितयी गुरु-गुरुगुरु-परमगुरुरूपा। तथा हुतभुजां वैश्वानराणां त्रयी दाक्षिणात्य-गार्हपत्य-आहवनीयाख्यास्त्रयोऽग्नयः। त्रीणि ज्योतींषि वा हृदय-ललाट-शिरःस्थितानि। शक्तित्रयं इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपम्। यद्वा ब्राह्मी वैष्णवी माहेश्वरी चेति तिस्रः शक्तयः। त्रयः स्वरा उदात्तानुदात्तसमाहाराः। यद्वा अकार-इकार-विन्दुरूपास्त्रयः स्वराः। यद्यपि व्याकरणे चतुर्दशस्वरास्तथाप्यागमे षोडशस्वराः। षोडशानां स्वरत्वं यथोत्तरषट्के 'षोडशारं महापद्मम्।' इत्युक्त्वा, 'प्रथमे स्वरसंघातम्' इत्युक्तेः, त्रय एव स्वराः। त्रैलोक्यं स्वर्ग-मर्त्य-पातालरूपम्। यदि वा मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरकमित्येको लोकः, आहारनिरोधविशुद्धमिति द्वितीयः, आज्ञास्पर्शब्रह्मस्थानमिति तृतीयः – इति त्रैलोक्यं ज्ञेयम्। त्रिपदी जालन्धर-कामरूप-उड्डीयाणपीठरूपा। यदि वा गगनानन्दः परमानन्दः कमलानन्द इति नाथत्रयं त्रिपदी। त्रिपुष्करं शिरो-हृदय-नाभिकमलरूपम्। तीर्थत्रयं वा त्रिपुष्करम्। त्रिब्रह्म इडा-पिङ्गला-सुषुम्णारूपम्। यद्वा अतीतानागतवर्तमानज्ञानप्रकाशकं हृद्व्योमद्वादशान्तम्, ब्रह्मरन्ध्रान्तं चेति ब्रह्मत्रिकम्। त्रयो वर्णा ब्राह्मणादयः। वाग्भवं कामराजं शक्तिबीजं चेति मूलमन्त्र एव वर्णत्रयं तन्मयत्वाद् वाङ्मयस्य।

उपसंहारमाह – यत् किंचिदिति। जगति संसारे त्रिवर्गादिकं धर्मार्थकामरूपं यत्किंचिल्लोके वर्त्तमानं चराचरावृतानावृत-स्थूलसूक्ष्म-लघुगुरु-कठिनकोमल-नीचोच्च-त्र्यस्रचतुरस्रादि विविधं वस्तु, त्रिधा त्रिभिः प्रकारैः, नियमितं रूपत्रयेण निबद्धम्। हे भगवति! तत् सर्वं तत्त्वतः परमार्थतः, त्रिपुरेति ते तव नामधेयमन्वेति अनुगच्छति। त्रयात्मका ये भावास्ते सर्वे त्रिपुरानामान्तर्गता इति। यथा मठत्रयं मुद्रात्रयं देवीत्रयं सिद्धत्रयमित्यादि निखिलं भगवत्याः स्वरूपमिदमिति वृत्तार्थः ॥ १६ ॥

१ मतान्तरे 'मठत्रयं वृक्षत्रयं मुद्रात्रयं' इति पाठः।

मुग्धमतिनि[illegible]प्रतीतये कतिचिन्नामधेयस्मरणफलमपि प्रकाशयन्नाह –

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणमुखे क्षेमंकरीमध्वनि
क्रव्याद[illegible]सर्प्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्ग्गे गिरौ ।
भूतप्रेतपिशाचजृम्भकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥ १७

व्याख्या – हे भगवति! भक्तजनाः, अमीषु सप्तसु स्थानेषु, त्वां स्मृत्वा विपदस्तरन्तीति स[illegible]न्धः। तत्र राजकुले भूपतिद्वारप्रवेशे 'लक्ष्मीम्' कमलां नवयौवनां विचित्राभर[illegible]जालभारिणीं छत्रचामरादिताद्दशासद्दशविभूतिमयीं तप्तस्वर्ण्णसवर्ण्णां भवतीं स्मृत्वा तन्मनीभावभाजो नरा वधबन्धापराधमहाधिव्याधिभ्यो मुच्यन्ते १। एवं रणमुखे 'जयाम्' २, क्रव्यादद्विपसर्प्पभाजि राक्षसगजकृष्णाहिभीषणेऽध्वनि मार्ग्गे 'क्षेमंकरीम्' ३, कान्तारदुर्ग्गे कान्तारेण विषममार्गेण वनेन वा दुर्ग्गे रौद्रे गिरौ पर्वते 'शवरीम्' ४, भूतप्रेतपिशाचजृंभकभये समुपस्थिते 'महाभैरवीम्' ५, व्यामोहे चित्तभ्रमे मतिमौढ्ये 'त्रिपुराम्' ६, तोयप्लवे जलब्रुडने 'तारां' च ७, ध्यात्वा तत्तत्संकटान्निस्तरन्ति ध्यातारः। तत्तत्कार्येषु साहाय्यदायिनीनां देवीनां ध्येयरूपवर्ण्णायुधसमृद्ध्यो गुरुपरंपरयैवावसेया इति वृत्तार्थः ॥ १७ ॥

यद्यपि भगवत्या नवकोटयः पर्यायास्तथापि स्थानाशून्यार्थं योगिनीदोषविधान-मन्त्रगर्भाणि कतिपयनामान्याह –

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।
शक्तिः शंकरवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥ १८

व्याख्या – अत्र सामान्यतस्तावच्चतुर्विंशतिर्भगवतीनामानि कथितानि सन्ति। तानि च पाठमात्रसिद्धानीति न पुनः प्रयासः। विशेषतस्तु चतुःषष्टियोगिनीनामत्र काव्ये गूढोक्तो म[illegible]ऽप्यस्ति। तत्र मायाशब्देन मायाबीजं ह्रींकारः। मालिनीति मा लक्ष्मीस्तद्बीजं श्रीं। कालीति व्यञ्जनम्। तेन कशब्देन सहिता ली काली तेन क्लीं इति सिद्धम्। बिन्दुरुच्चारणविभागाद् ज्ञेयः। शक्तिरिति शक्तिबीजं ह्सौं। वागिति वाग्बीजं ऐंकारः। इति पञ्च बीजानि जातानि। आदौ प्रणवः अन्ते च नमः इति सर्व-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मन्त्रसामान्यं ज्ञेयम्। न्यासे पुनरयमक्षरक्रमः – ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ह्सौं नमः। एतस्याम्नायस्य पूर्वसेवायां जापोऽष्टोत्तर सहस्रम् (१००८) प्रतिदिनमष्टोत्तरशत (१०८) जापे सुखमारोग्यं वश्यं समृद्धिर्वन्दिमोक्षश्च फलम्। ध्यानं तु शान्ते कार्ये श्वेतम्, वश्ये रक्तम्, मोहने पीतम्, उच्चाटने कृष्णं ज्ञेयम्। इयं तु योगिनीनां विद्या। अतस्तत्प्रसंगेन योगिनीदोषविधानयन्त्रमपि भक्तोपकाराय प्रकाश्यते। तासां नामानि चैतानि – ब्रह्माणी १, कुमारी २, वाराही ३, शंकरी ४, इन्द्राणी ५, कंकाली ६, कराली ७, काली ८, महाकाली ९, चामुण्डा १०, ज्वालामुखी ११, कामाख्या १२, कपालिनी १३, भद्रकाली १४, दुर्गा, १५, अम्बिका १६, ललिता १७, गौरी १८, सुमङ्गला १९, रोहिणी २०, कपिला २१, शूलकरा २२, कुण्डलिनी २३, त्रिपुरा २४, कुरुकुल्ला २५, भैरवी २६, भद्रा २७, चन्द्रावती २८, नारसिंही २९, निरञ्जना ३०, हेमकान्ता ३१, प्रेतासना ३२, ईशानी ३३, वैश्वानरी ३४, वैष्णवी ३५, विनायकी ३६, यमघण्टा ३७, हरसिद्धिः ३८, सरस्वती ३९, तोतला ४०, वन्दी ४१, शंखिनी ४२, पद्मिनी ४३, चित्रिणी ४४, वारुणी ४५, चण्डी (–प्रत्यन्तरे नारायणी) ४६, वनदेवी ४७, यमभगिनी ४८, सूर्यपुत्री ४९, सुशीतला ५०, कृष्णवाराही ५१, रक्ताक्षी ५२, कालरात्रिः ५३, आकाशी ५४, श्रेष्ठिनी ५५, जया ५६, विजया ५७, धूमावती ५८, वागीश्वरी ५९, कात्यायिनी ६०, अग्निहोत्री ६१, चक्रेश्वरी ६२, महाविद्या, ६३, ईश्वरी ६४।

यन्त्रं चेदम् –

२३	१८	१५	८
११	१२	१९	२२
१७	२४	९	१४
१३	१०	२१	२०

तासां कुङ्कुम-गोरोचनाभ्यां यन्त्रमिदं लिखित्वा विधिवत् फलपुष्पगन्धधूपमुद्रानैवेद्यदीपपूजां कृत्वा शुचिरेकाग्रमनाः, चतुःषष्टियोगिनीः – सर्वा अपि रुधिरामिषक्षीरसुराप्रियाः केलिकोलाहलगीतनृत्यरता लघ्वी तरुणी प्रौढा वृद्धा भ्रमराग्निसूर्यशशिवर्णा विकटाक्षीः विकटदन्ता मुत्कलकेशाः करालजिह्वा अतिसूक्ष्ममधुरघर्घरोत्कटनिनादाः स्थिरचपलाः शान्तरौद्राश्छलबलघातप्रभविष्णूश्चतुर्भुजा दिव्यवस्त्राभरणा अङ्कुशपाशकपालकर्त्तिकात्रिशूलकरवालशङ्खचक्रगदाकुन्तधनुर्वज्राद्यायुधविभूषिता विष्कंभादि-सप्तविंशतियोग-अश्विन्यादि-अष्टाविंशतिनक्षत्र-मेषादिद्वादशराशि-चन्द्र-सूर्यादिनवग्रह-नारसिंहवीर-क्षेत्रपाल-माणिभद्र-माहिल्लादियक्षपरिवृताः। पूर्वोक्तं मन्त्रं जपेत्। योगिनीदोषो याति।

चतुःषष्टि समाख्याता योगिन्यः कामरूपिकाः।
पूजिताः प्रतिपूज्यन्ते भवेयुर्वरदाः सदा ॥ १ ॥

इति योगिनीचक्रविधानमप्यत्रान्तर्भूतं ज्ञेयमिति श्लोकार्थः ॥ १८ ॥

निःशेषतः। त्रिपुरानामोत्पत्तिसंज्ञामाह –

आ ई पल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वि-त्रिक्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते
तेभ्यो भैरवपत्नि विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥ १९

व्याख्या – हे त्रिपुरे! आ ई पल्लवितैः आकार-ईकारसंयुक्तनामाद्यैः परस्परयुतैः अन्योऽन्यमिलितैः, द्वि-त्रिक्रमाद्यक्षरैः वर्णद्वय-त्रय-चतुष्टयवद्भिर्नामभिः; कैरित्याह काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिः कवर्णमादौ कृत्वा क्षकारं यावत् पञ्चत्रिंशद्वर्णैः षोडशभिः स्वरैः सह प्रत्येकं गण्यमानानि यानि नामानि भवन्ति। यथा अकाई, अखाई, अगाई, अघाई, यावत् अक्षाई इत्यादि; एवं आकाई, आखाई, आक्षाई इत्यादि; अःकाई, अःखाई, अःक्षाई पर्यन्तानि नामानि षष्ठ्याधिकपञ्चशतानि भवन्ति। अङ्कतोऽपि ५६०। अथानन्तरं क्षान्तैश्च तैः तैः ककाराद्यैः क्षकारपर्यन्तैः, आ ई पल्लवितैः परस्परयुतैः, यानि नामानि भवन्ति। यथा ककाई, कखाई, कक्षाई, यावत्; एवं खकाई, खखाई, खक्षाई; गकाई, गखाई, गगाई, गक्षाई यावत्; क्षकाई, क्षखाई, क्षगाई, क्षक्षाई पर्यन्तैः पञ्चत्रिंशता गुणितैः जातानि द्वादशशतानि पञ्चविंशत्यधिकानि १२२५ इति।

अन्यच्च – तैरपि किंविशिष्टैः सस्वरैः षोडशस्वरसहितैः। तैः स्वरैरपि सह पाश्चात्यनामानि कथ्यमानानि भगवतीनामसु गण्यन्त इत्यर्थः। यथा अककाई, अककखाई, अकगाई, अकघाई, अकक्षाई यावत्; आककाई, आकखाई, आकक्षाई यावत्; एवं यावत् षोडशापि स्वराः पुनः खकाराद्यैः सह यथा – अखकाई, अखखाई, अखगाई; एवं आखकाई, आखक्षाई यावत्। एवं अगकाई, अगखाई, अगगाई; आगकाई, आगखाई, आगगाई यावत्; इगकाई, इगखाई, ईगगाई; अः गकाई, अः गखाई किं बहुना यावत् अक्षकाई, अक्षखाई; आक्षकाई, आक्षखाई; इक्षकाई, ईक्षकाई यावत् अः क्षकाई, अः क्षखाई, अः क्षगाई, अः क्षक्षाई पर्यन्तानि एकोनविंशतिसहस्राणि षट्शताग्राणि नामानि। यतो द्वादशशतानि पञ्चविंशति अधिकानि षोडशस्वरैर्गुणितानि एतावन्ति नामानि भवन्ति। अङ्कतोऽपि १९६००। सर्वमीलने षष्ठ्युत्तरशताधिकानि विंशतिसहस्राणि नामानि जायन्ते। अङ्कश्चायं २०१६०। अत्र तु ग्रन्थविस्तरभयाद्दिङ्मात्रमेव दर्शितम्। अभियोगपरायणैः स्वयमभ्यूहनीयानि।

प्रस्तुतमाह – हे भैरवपत्नि रुद्राणि! अनेनामन्त्रणपदेन तद्भार्यात्वाद्भगवत्या अप्यगाधत्वं ज्ञापितम्। ततश्च हे त्रिपुरे! खलु निश्चयेन यान्यत्यन्तगुह्यानि मन्दधियामगम्यानि ते तव नामानि भवन्ति परेभ्यः किंचित्साधिकेभ्यो विंशतिसह-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

[illegible] नामभ्यो नमः नमस्कारोऽस्तु । एतावाद्भिः सर्वैरपि नामधेयैः कृतो नमस्कारो भावभृतां त्वय्येवोपतिष्ठत इति भावार्थः ॥ १९ ॥

उक्ततत्त्वोल्लिङ्गनपुरस्सरं निजस्तुतेः सज्जनग्राह्यतामाह—

बोद्धव्या निपुणं बुधैस्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्यास्त्रिपुरेत्यनन्यमनसो यत्राद्यवृत्ते स्फुटम् ।
एक-द्वि-त्रिपदक्रमेण कथितस्तत्पादसंख्याक्षरैर्
मन्त्रोद्धारविधिर्विशेषसहितः सत्संप्रदायान्वितः ॥ २०

व्याख्या — बुधैः पण्डितैरियं भगवत्याः स्तुतिः तद्गतं मनः कृत्वा, प्रणिधानेन भगवतीमयं चित्तं विधाय, निपुणं यथा भवति तथा, एवं बोद्धव्या सामान्यविशेषोक्तप्रकारेण साधुभङ्ग्या ज्ञातव्या । यतो बहुधा त्रिपुरीया उद्धाराः सन्ति । तथा च

यथावस्थितमेवाद्यं द्वितीयं सहकारकम् ।
तृतीयं हसमारूढं त्रिपुराबीजमुत्तमम् ॥

तेन ऐँ ह्स्क्लीँ ह्स्ह्सौँ इति सिद्धम् । अन्यच्च — यथापिण्डीभूत त्रिपुरा इत्यादिविशेषैः द्वितीया कामत्रिपुरा, तृतीया त्रिपुरभैरवी, वाक्त्रिपुरा ४, महालक्ष्मी ५, वन्हित्रिपुरा ६, मोहनी ७, भ्रमणावली ८, नन्दा ९, त्रैलोक्यस्वामिनी १०, हंसिनी ११ — इत्यादिविशेषाम्नायः । अक्षरपूजायां लिपेः प्राधान्यम्, जापाभ्यासे तूच्चारणस्य प्राधान्यम् — इत्यादि सर्वं निपुणं बोध्यम् ।

कस्याः स्तुतिरित्याह—त्रिपुरेति भारत्यास्त्रिपुराऽपरनाम्न्याः सरस्वत्याः । कथंभूतायाः ? अनन्यमनसो असामान्यचेतस्काया महामायायाः । यत्र यस्यां स्तुतौ स्फुटं प्रकटमाद्यवृत्ते प्रथमकाव्ये एक - द्वि - त्रिपदक्रमेण त्रिभिः पदैः तत्पादसंख्याक्षरैर्वर्णत्रयेण वाग्बीज - कामबीज - शक्तिबीजरूपेण मन्त्रोद्धारविधिः कथितः । किंभूतो ? विशेषसहितः । विशेषाश्च 'सहसा' इति पदेन प्रथमवृत्त एव प्रकाशितत्वान्न पुनरुच्यन्ते । पुनर्विशिनष्टि सत्संप्रदायान्वित इति । संप्रदायो गुरुपारंपर्यम् । यथा त्रिपुराशब्देन चराचरत्रिजगदुत्पत्तिक्षेत्रं त्रिरेखामयी योनिरभिधीयते । अत 'एषाऽसौ त्रिपुरा' इत्यादौ प्रोक्तम् । एकारस्य तदाकारत्वादेव । यद्वा प्रकारान्तरेऽष्टदलं पद्मं आलिख्य, कर्णिकायां देव्याः मूर्त्तिः बीजं वा पत्रेषु च लोकपालाष्टकं नागकुलाष्टकं सिद्धयोऽष्टौ सिद्धाष्टकं क्षेत्रपालाष्टकं धर्माष्टकमित्याद्यालिख्य "द्राँ द्रीँ क्लीँ ब्लूँ सः" इति शोषण - मोहन - संदीपन - तापन - उन्मादन - पञ्चबाणपुष्पैर्योनिमुद्गरधेनुपाशाङ्कुशादिमुद्रादर्शंदर्शं पूजयेत् । ततो जापस्तत्प्रमाणानुगामि च फलमिदम् । यथा —

लक्षजापे महाविद्या वर्णमालाविभूषिता ।
जाप्यं करोति भूपालं साधकस्य च दासवत् ॥ १ ॥
लक्षद्वयं महाविद्यां जपमानो महेश्वरः ।
रक्तध्यानान्महामन्त्रः क्षोभयेद् युवतीजनम् ॥ २ ॥

[illegible]त्रयेण देवेशो यक्षिणीनां पतिर्भवेत् ।
योगयुक्तो महामन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥
चतुर्लक्षैः सदा जप्तैः पातालं साधकोत्तमः ।
क्षो[illegible]येन्नात्र संदेहः प्रोच्यते योगिनीमते ॥ ४ ॥
प[illegible]लक्षैः सदा जप्तैर्निर्गच्छन्ति सुराङ्गनाः ।
पातालं स्फोटयन्त्यश्च साधकस्य वशानुगाः ॥ ५ ॥
ष[illegible]भिर्लक्षैर्महादेवं चिन्तितं सिद्ध्यते नृणाम् ।
सप्तलक्षैस्तथा जप्तैर्नरो विद्याधरो भवेत् ॥ ६ ॥
अष्टलक्षैस्तथा जप्तैः फलं देवी प्रयच्छति ।
तेन भक्षितमात्रेण कल्पस्थायी भवेन्नरः ॥ ७ ॥
नव[illegible]लक्षैस्तथा जप्तैर्विद्याधरपिता भवेत् ।
दशलक्षैः कृतैः जापैः वज्रकायो भवेन्नरः ॥ ८ ॥
एकादशै रुद्रगणो द्वादशैश्च सुरोत्तमः ।
लक्षैस्त्रयोदशैर्वीरो मायासिद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥
चतुर्दशभिर्लक्षैस्तु देवराजस्य वल्लभः ।
उ[illegible]न्नसेवको मन्त्री गीयते देवनारिभिः ॥ १० ॥
उ[illegible]ः पंचदशैर्लक्षैर्नालिकेरं प्रयच्छति ।
सा[illegible]कस्य महादेवी हृष्टतुष्टा कुलाङ्गना ॥ ११ ॥
[illegible] भक्षितमात्रेण नरो ब्रह्मगणो भवेत् ।
त्रि[illegible]शैः पूज्यते नित्यं कन्याकोटिशतैस्तथा ॥ १२ ॥
[illegible]ः षोडशभिर्लक्षैः साधकस्य सुरेश्वरः ।
[illegible]गाङ्गनं पदं पट्टं कुण्डलानि प्रयच्छति ॥ १३ ॥
[illegible]दशभिर्नरो लक्षैर्जप्तैर्धर्मोपमो भवेत् ।
[illegible]रष्टादशैर्लक्षैर्विष्णुरूपधरो भवेत् ॥ १४ ॥
[illegible]कोनविंशतिभिर्लक्षैर्देवी पाशं प्रयच्छति ।
साधकस्तेन पाशेन बन्धयेत् स सुरासुरान् ॥ १५ ॥
[illegible] क्रमेण कश्चित्तु कोट्यर्द्धं कुरुते जपम् ।
[illegible]मयेच्च दशांशेन दुग्धाज्यं गुग्गुलं मधु ॥ १६ ॥
[illegible]न्याकारे महाकुण्डे रक्ताभरणभूषितः ।
[illegible] मन्त्री विधिसंयुक्तो देवराजो भविष्यति ॥ १७ ॥
[illegible]टिजापे कृते मन्त्री लीयते परमे पदे ।
[illegible] जापक्रमः प्रोक्तो होमयुक्तो महाफलः ॥ १८ ॥

इत्यादिगुर्वाम्नायेनान्वितो युक्तोऽयं त्रैपुरमहामन्त्रोद्धारो ज्ञेयः । इति पद्यार्थः ॥ २० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अथ स्तुत्युपसंहारे कविर्गर्वापहारमाह –

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किंवाऽनया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति जनो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि ।
संचिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं संजायमानं हठात्
त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम् ॥ २१

व्याख्या – ननु लघुकविकृतत्वादवज्ञास्पदत्वे स्तोत्रमिदं कः पठिष्यतीति चित्ते वितर्क्य, इदं स्तोत्रं सावद्यं सदोषमस्तु यदि वा निरवद्यं निर्दोषमास्तां वा, अनया चिन्तया किं कोऽत्र परमार्थ इति । नूनं निश्चितं स जनः स्तोत्रमिदं पठिष्यति यस्य पुंसस्त्वयि भक्तिरस्ति । ननु पाठकभाववैमनस्यं चेत् किमर्थं स्तुतिः कृतेत्याह – दृढमत्यर्थमात्मनि संजायमानं घटमानं लघुत्वं बालकत्वं संचिन्त्यापि ज्ञात्वापि, यस्मात् कारणात्, मयापि हठाद् बलेन, तव भक्त्या मुखरीकृतेन भक्तिरसवाचालेन सता, ध्रुवं निश्चितं रचितं स्तोत्रमिदं कृतम् । न खलु भगवतीस्तुतिकरणे मम शक्तिसमुल्लासः, किंतु व्यक्तिकोटिसंटंकिभक्तिसमुद्भूतपरमानन्दरसपरवशेन यथाभावनं मया देवीं स्तुत्वा, बालस्वभावसुलभं मुखरत्वमेवाविःकृतम् । किंचान्यद्, बालको हि यथा मातुरुत्संगसंचारी स्वेच्छया लपन्नपि न दूषणीयः, प्रत्युत भूषणीयो भवति । तथाऽहमज्ञानशिरोमणिरपि जगन्मातरं निजसहजलीलया स्तुवन्, सदोषोऽपि नापराधभाजनम्, किंतु दूषणमुद्धृत्यातुल्यवात्सल्यसुधाप्रवाहैः प्रीणयित्वा च प्रमाणपदवीमध्यारोपणीयसकलकल्याणमयो भविष्यामीति वृत्तार्थः ॥ २१ ॥

*जाता नवाङ्गीविवृतेर्विधातुरनुक्रमेणाभयदेवसूरेः ।
युगप्रधाना गुणशेखराह्वाः सूरीश्वराः संप्रति तस्य पट्टे ॥ १ ॥
श्रीसिंहतिलकसूरिस्तच्चरणाम्भोजखेलनमरालः ।
श्रीसोमतिलकसूरिर्लघुस्तवे व्यधित वृत्तिमिमाम् ॥ २ ॥
श्रीकाम्बोजकुलोत्तंसः स्थाणुनामाऽस्ति ठक्कुरः ।
तस्याभ्यर्थनया चक्रे टीकेयं ज्ञानदीपिका ॥ ३ ॥
मुँनि-नंदँ-गुणँ-क्षोणी-मिते विक्रमवत्सरे ।
कृता घृतघटीपुर्यामान्द्रार्कं प्रवर्त्तताम् ॥ ४ ॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्या ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।
अनुष्टुभां चतुःसप्तत्यग्रा जाता चतुःशती ॥ ५ ॥ अङ्कतोऽपि ४७४ ॥

॥ इति श्रीलघुस्तवव्याख्या पूर्णेति श्रीः ॥

* प्रत्यन्तरे टीकाकर्तुरेषा प्रशस्तिः लिखिता नोपलभ्यते । † प्रत्यन्तरेऽयं श्लोको न दृश्यते ।

त्रिपुरा भारती लघुस्तवस्य
पञ्जिका नाम विवृत्तिः ।

卐

केवलाक्षरशुद्ध्यर्थमर्थमात्रप्रतीतये ।
लघुस्तवे महावृत्तिरुद्धृता ज्ञानतो मया ॥

अथ लघुस्तवस्य विवृत्तिरभिव्यज्यते –

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती ० ॥ १ ॥

अक्षरार्थव्याख्यानम् – एषाऽसौ त्रिपुरा त्रिभिः पदैः वाक्यैर्वक्ष्यमाणैः ऐंकारप्रभृतिभिः; अथवा पदैः स्थानैः ललाट-शिरो-हृदयरूपैः, सहसा झटिति स्वबलेन वा, वो युष्माकम्, अघं पापं दारिद्र्यं वा मरणं वा छिन्द्यात् । असौ परा त्रिपुरा । इदानीं स्थानत्रितयं ध्यानत्रयमाह । किं कुर्वती ? मध्येललाटं ललाटस्य मध्ये, पारे मध्ये अन्तः षष्ठ्या वेत्यव्ययीभावः, भ्रूमध्ये, ऐन्द्रस्येव इन्द्रसम्बन्धिनः शरासनस्य, प्रभामिव रागद्वयार्थमारक्तरूपं दधती । तथा शिरसि ब्रह्मप्रदेशे, अनुष्णगोः शीतांशोः सर्वतः प्रसारिणीं शौक्लीं श्वेतरूपां कान्तिम्, ज्योत्स्नामिव प्रतिभोल्लासार्थं आतन्वती विस्तारयन्ती । अनुष्णगौरिवेति पाठे गौरतद्धिताभिधे य इति गणकृतस्यानित्यत्वाददन्तता नास्ति । यथा अनुष्णगुश्चन्द्रः शुक्लां चन्द्रिकां क्षिपति, तथा हृदयकमले उष्णांशोर्भगवतो रवेः सदाऽहःस्थिता सप्रतापा, यद्वा सदाऽहनि स्थिता लक्ष्मीप्राप्त्यर्थं द्युतिरिव । अतश्चेन्द्रचाप-शीतांशु-सूर्याकारधारणात्, ज्योतिर्मयी सारस्वतरूपा च इत्यनेन कामराजबीजं वाग्भवबीजं चोपन्यस्तम् ।

इदानीं सामान्यविशेषाभ्यां त्रिपुराया मन्त्रोद्धारः प्रतिपाद्यते । वक्ष्यति च बोद्धव्या निपुणं बुधैरित्यादि । तत्र एक-द्वि-त्रिपदक्रमेण प्रथमे पादे प्रथमाक्षर ऐँकारः, द्वितीये पादे द्वितीयाक्षरः क्लीँकारः, तृतीये पादे तृतीयाक्षरः सौँकारः । सदा हस्थिता नित्यं हकारे स्थिता ह-सहिता तेन ह्सौँ इति सिद्धम् । अत्र देव्या मन्त्रद्वयमूर्तित्व वा हृदि विशेषणत्वेन बीजाक्षरविशेषणम् । एवं ऐँ क्लीँ ह्सौँ इति सामान्येन तावदुक्तम् । वक्ष्यति च विशेषसहितः सत्सम्प्रदायान्वित इति तेन विशेषो बोद्धव्यः । मन्त्रोद्धारपक्षे सर्वतः सरु इति भिन्नं पदं क्रियाविशेषणम् । सरु यथा भवति एवं क्लीँकारो ज्ञेयः । सह रुणा वर्तत इति । उकारस्योच्चारणत्वेन सम्बन्धो ह्यधस्तनं भागं लक्षयति । तेन अधोभागे रेफः सिद्धः । तेन क्लीँ द्भवि । अतः शिरोध्यानादनन्तरमित्यर्थः । त्रिभिः पदैः वाक्यैः ऐँकारप्रभृतिभिः ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

सहसा हश्च सश्च हसौ सह ताभ्यां वर्तते सहसा तेन ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्सौः इति विशेषसहितः । अथ किमेषा त्रिपुरा उत त्रिपुरभैरवी । यथोत्तरषट्के त्रिपुरामुद्दिश्य उदाहृतम् । तद् यथा –

अथातः संप्रवक्ष्यामि सम्प्रदायसमन्वितम् ।
त्रैलोक्यडामरं मन्त्रं त्रिपुरावाचकं महत् ॥

पुनस्तत्रैव – पूर्वोक्तं मन्त्रमालिख्य त्रिपुरावाचकं महत्
अथातः संप्रवक्ष्यामि त्रिपुरायोगमुत्तमम् ॥

त्रिपुरा त्रिपुरेति श्रूयते । पञ्चरात्रे तु तत्त्वसंहितायां तैरेव बीजाक्षरैस्त्रिपुरभैरवीयं भणित्वा कथिता । यथा –

वाङ्मयं प्रथमं बीजं द्वितीयं कुसुमायुधम्
तृतीयं बीजं संज्ञं तु तद्धि सारस्वतं वपुः ॥
एषा देवी मया ख्याता नित्या त्रिपुरभैरवी ॥

अतः संदेहः । अथ उत्तरषट्केऽपि –

एकाक्षरा मया प्रोक्ता नाम्ना त्रिपुरभैरवी ॥

तथैव – मूलविद्या तु नाम्ना त्रिपुरभैरवी ॥

इत्युक्तम् । तदुच्यतामुत्तरं कथमियमिति । सत्यम् । बहवो हि अस्या उद्धारप्रकाराः सम्प्रदायाः पूजामार्गाश्च । तथा नारदीयविशेषसंहितायामुक्तम् –

वेदेषु धर्मशास्त्रेषु पुराणेष्वपि तेष्वपि
सिद्धान्ते पञ्चरात्रेषु बौद्धे चार्हतिके तथा ॥
सुशास्त्रेषु तथाऽन्येषु शंसिता मुनिभिः सुरैः ॥ इत्यादि ।

तथा – मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि गुप्तमार्गेण वासवम् ।
विशेषस्त्वधिगन्तव्यो व्याख्यानाद्गुरुवक्त्रतः ॥

अथ क्वचिन्मन्त्रोद्धारभेदात् क्वचिदासनभेदात् क्वचित्संप्रदायभेदात् क्वचित्पूजाभेदात् क्वचिन्मूर्तिभेदात् क्वचिद्ध्यानभेदात् बहुप्रकारा त्रिपुरा चैषा – क्वचित् त्रिपुरभैरवी, क्वचित् त्रिपुरभारती, क्वचित् त्रिपुरसुन्दरी, क्वचित् त्रिपुरललिता, क्वचित् त्रिपुरकामेश्वरी, क्वचिदपरेण नाम्ना क्वचित् अपरैवोच्यते । तथा सामान्य-विशेषाभ्यां त्रिपुरेयमित्युक्तम् । एषाऽसौ त्रिपुरेत्यादि ॥ १ ॥

इदानीं प्रथमाक्षरस्य विशेषमाहात्म्यमाह –

या मात्रा त्रपुषीलतातनुलसत् ० ॥ २ ॥

अहो भगवति ! तव प्रथमे वाग्भवबीजे ऐंकाररूपे, या मात्रा सदा नित्यं स्थिता । किंभूता ? त्रपुषीलतातनुलसत्तन्तुस्थितिस्पर्धिनी – त्रपुषीलता चिर्भटिकाविशेषवल्ली तस्यास्तनुः सूक्ष्मोल्लसत्शोभायमानो यस्तनुः पादप्ररोहस्तस्य स्थितिराकृतिस्तां स्पर्धते, तामनुकारं स्पृशन्तीत्येवंशीला सा तथोक्ता । यैरस्माभिश्चराचराणां सृष्टिहेतुर्मुक्तिदानाय सृष्टिरवगता, ते । एवं ज्ञानात् प्रसिद्धा वयं शाक्तेयाऽऽगमविदस्तां मात्रां कुण्डलाकारत्वात् कुण्डलिनीति नाम्ना शक्तिं मन्महे । मनु बोधने तुदादिरयम् । किंभूताम् ? विश्वजनमव्यापारबद्धोद्यमाम् = विश्वं त्रिभुवनं तस्य जननव्यापारः कृतिनिर्माणस्तत्र बद्धोद्यमां कृतोत्साहाम् । अथवा विश्वजनानां त्रिजगल्लोकानाम्, नव्या अदृष्टश्रुतपूर्वाः, अपारा बहवः बद्धा आरब्धा साराश्च उद्यमाः पालनादयो यया सा तथोक्ता ताम् । इत्थं सानुरूपां कुण्डलिनीं शक्तिम्, ज्ञात्वा सम्यग् अवगम्य पुरुषा जननीगर्भे अर्भकत्वं न पुनः स्पृशन्ति संसारिणो न भवन्ति, मुक्तिमेव प्रतिपद्यन्ते इत्यर्थः ॥ २ ॥

इदानीं प्रथमाक्षरस्य वाग्भवबीजस्य माहात्म्यं प्रतिपादनार्थं पठितसिद्धत्वमाह–

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ० ॥ ३ ॥

अहो देवि वरदे ! विश्वप्रसादकारिणि !, येन केनापि विदुषा मूर्खेण वा, संभ्रमकारि आश्चर्यरूपं वस्तु दिवि तारकाऽप्सरोदर्शनादिकं प्रेक्ष्य, आकूतरसात् अद्भुतरसानुभावात्, सहसा अकस्मात्, ऐ ऐ इत्यक्षरमुक्तम् । आश्चर्यवशात् वीप्सा । तर्हि सानुस्वारं दुर्भविष्यति ऐंकार इत्याह – विन्दुं विना अपि । सानुस्वारो हि ऐंकारः प्रथमं बीजम् । अपि विस्मये । तस्य मुखकुहरात् सूक्तिसुधारसद्रवमुचः सुभाषितामृतरसास्वादसुन्दिन्यो वाचो निर्यान्ति स्वयमुद्भवन्ति । नन्वेवं विधानां वाणीनां कथमुत्पत्तिस्तत्राह – तस्यापीत्यादि ॥ हे देवि ! ध्रुवं निश्चितं तव अनुग्रहे प्रसादे, तरसा जवं विनाऽपि बलात्कारेण, तस्य जाते एव उत्पन्ने एव, स त्वया तदाप्रभृति शिरसि हस्तं दत्त्वा अनुगृहीत इत्यर्थः ॥ ३ ॥

इदानीं द्वितीयाक्षरस्य माहात्म्यमाह –

यन्नित्ये तव कामराजमपरं ० ॥ ४ ॥

अहो नित्ये शाश्वते ! तव भवत्या, यद् अपरं द्वितीयं कामराजनाम मन्त्राक्षरम्, निष्कलं शुद्धं क्लींकाररूपम्, तत् सारस्वतम्, भुवि कश्चिद्विद्यावान् वेत्ति । स विरलो न सर्वः कोऽपि । किंभूतम् ? अपरं रकाररहितम् क्लीमिति । निष्कलं कश्च लश्च कलौ निर्गतौ कलौ यस्मात् तत् निष्कलम् । ईकाररूपं यद् बीजं सारस्वतम् । द्विजाः ब्राह्मणाः, प्रतिपर्वणि, सत्यतपसो मुनेराख्यानं चरितं कीर्तयन्तः पुण्यार्थं पठन्तः सन्तः, प्रारम्भे तदुपक्रमे, प्रणवास्पदप्रणयितां ॐकारस्थाने प्रतिष्ठां नीत्वा प्रापय्य, स्फुटमुच्चरन्ति अधीयन्ते । सत्य तपसो मुनेः परमनिष्ठाप्रकर्षेण नैष्ठिकभावो बभूव । यद् यस्य भगवतो मुने दुःसहशरनिकरप्रहारविह्वलं चीत्कु-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

र्वन्तं पलायमानं वराहमालोक्य, तत्क्षणं संक्रान्तयेव तत्पीडया परमकारुण्यात् ईमिति निर्वेदवाक्यं निर्गतम्। तदनन्तरं तत्पृष्ठत एवागतेन व्याधेन पृष्टः– 'यद् भगवन्! शरनिकरप्रहतो वराहः केन वर्त्मना गतः? मत्कुटुम्बं बुभुक्षया म्रियते, तदाख्याहि।' तत्रान्तरे यदि दृष्टः कथ्यते, तदा वराहवधपातकं स्यात्; अथ यदन्यदाख्यायते तदा असत्यमुक्तं स्यात्; व्याधकुटुम्बबुभुक्षया पातकमपि दुर्वारमिति; प्रतिक्षणं चेतसि चिन्तयतो मुनेः परलोकभीरोर्यत्पूर्वं ई इति पदमुच्चरितं तेनैव सारस्वतबीजोच्चारमात्रेण तुष्टा सरस्वती तद्वदनकमलमवतीर्य सूनृतं वचनमुच्चचार। यथा

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते पश्यति न सा।
अहो व्याध! स्वकार्यार्थी किं पृच्छसि पुनः पुनः॥

तेन सम्प्रदायात् प्रथमं तद्बीजमुच्चार्य तदाख्यानाध्यायं पर्वकाले ब्राह्मणाः पुण्यार्थं पठन्ति॥ ४॥

इदानीं तृतीयाक्षरस्य प्रभावमाह–

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे ०॥ ५॥

अहं स्तुतिकर्ता, तार्त्तीयं पदं तृतीये भवं ह्सौँ इति बीजं इन्दुप्रभं चन्द्रधवलं तन्मनसा नमामि। किंभूतम्? अविद्यमानो हो हकारो यस्य तदहं हकाररहितं सौ इति पदम्। यत् सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे स्फूर्तिविधानेऽपि विद्वद्भिः दृष्टप्रभावम्। तदुक्तम्–

बीजं दक्षिणकर्णस्थं वाचया च समन्वितम्।
एतत् सारस्वतं बीजं सद्यो वचनकारकम्॥

बीजं सकारः, दक्षिणकर्णस्थ औकारः, वाचा विसर्गः। सौरिति पदं तु पुनः अस् सकाररहितः चतुर्दशस्वरः, सरस्वतीमनुगतः सारस्वतरूपेणावस्थितः, वो युष्माकम्, जाड्याम्बुविच्छित्तये अस्तु भवतु। और्वोऽपि वडवाग्निरपि, सरस्वत्या नद्याः, समुद्रे क्षिप्तं जलं शोषयतीत्युक्तिलेशः। गौः शब्दो गिरि वाचि वर्तते। स गौः शब्दो गं विना गकाररहित औकारमात्रः; यद्वा योगं विना ध्यानमन्तरेण, सिद्धिं ददातीति॥ ५॥

इदानीं बीजत्रयस्य विशेषमाह–

एकैकं तव देवि बीजमनघं ०॥ ६॥

हे देवि! तव अनघं निर्मलं बीजम्, नृणां तं तं निखिलाभिलाषम्, तरसा वेगेन, सफलीकरोति साधयति। कथंभूतं सत्? नरैर्यं यं कामं दुर्लभमभिलाषम्, येन केनापि विधिना आगमोक्तविधानेन, यदृच्छया चिन्तितं अक्लेशेन सामान्येन ध्यातम्, जप्तं विधानेन ब्रह्मचर्यादिपूर्वं गणितम्। पुनः किंभूतं बीजम्? सकलबीजमध्यात् पृथक्। यथा ऐँ क्लीँ ह्सौँ। तथा सव्यञ्जनं हकार-सकारयुक्तम्। यथा ह्सैँ ह्स्क्लीँ ह्सौँ। तथा सकार-हकार युक्तम्। यथा स्हैँ स्हक्लीँ स्हह्सौँ। तथा चोक्तं नित्यपद्धतौ–

मंतागारो पाए सो हयारपुव्वो वि तत्तमग्गंमि।
सो वि य सयारपुव्वो विज्जाइभेयकरो होइ॥

अव्यञ्जनं यथा–ऐ ई औ। तथा कूटस्थं पिण्डीताक्षरं यथाक्रममेव। तथा पृथक् २ अकूटस्थं विवृताक्षरमेव। तथा क्रमगतं विवृतमेव। तथा व्युत्क्रमात् क्रमाभावाद्वा। यथा ह्सौँ क्लीँ ऐँ। तथा क्लीँ ऐँ ह्सौँ ...इत्याद्यष्टसंख्यं स्वयमेवोह्यम्॥ ६॥

इदानीं विशेषमन्त्राक्षरमाख्याय सकलं ध्यानविशेषमाह–

वामे पुस्तकधारिणीमभयदां ०॥ ७॥

अहो मातः! ये पुरुषाः, एवंविधां त्वां वक्ष्यमाणरूपाम्, मनसा न शीलयन्ति न परिचिन्तयन्ति, तेषां कुतः कवित्वम्? क्व काव्यसंदर्भप्रतिभा स्यात्। कुतः–अध्यादिभ्यस्तस् वक्तव्यः– इत्यधिकरणे तस्प्रत्ययः। किंभूताम्? वामे पक्षे एकहस्ते पुस्तकधारिणीम्, द्वितीये हस्ते अभयदाम्। तथा दक्षिणे भागे तृतीये हस्ते साक्षस्रजं जपमालिकासहिताम्। चतुर्थहस्ते भक्तेभ्य इति सम्प्रदाने चतुर्थी, वरदानपेशलकराम्। पेशलः स्थूललक्षः बहुव्ययी एवंविधभुजाम्। इत्थं चतुर्भुजकथनम्। तथा कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम्। एतयोरुपमानेन श्वेतत्व-सौकुमार्य-महार्घ्यतादिगुणवर्णनम्। पुनरपि किंभूताम्? उज्जृंभाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीम्–उज्जृम्भं उन्निद्रं यद् अम्बुजं तस्य पत्रं दलं तद्वत् कान्ते नयने तयोः स्निग्धा अरुक्षा रक्तप्रभा कान्तिस्तद्युक्तमालोकयन्तीत्येवंशीला सा तथोक्ता, ताम्॥ ७॥

इदानीमुदारवचनप्रवाहजननं शिरोध्यानमाह–

ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटल ०॥ ८॥

अहो भारते! वाग्देवते! ये पुमांस इत्थंभूतां त्वां ध्यायन्ति अन्तर्दृष्ट्या अवलोकयन्ति। किंभूताम्? मूर्ध्नि स्थिताम्, अमृतद्रवैः सुधावृष्टिभिः शिरोऽर्वाक् ध्यायिनां ब्रह्मप्रदेशं सिञ्चन्तीं वर्षन्तीमिव। ननु किंरूपाऽस्तीत्याह–पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभाम्। अत्र पुण्डरीकशब्देन सामान्यपद्ममात्रमवगम्यते। अन्यथा पुण्डरीकस्य श्वेतत्वात्, पाण्डुरशब्दाधिकत्वम्। पाण्डुरं श्वेतवर्णं यत् पुण्डरीकपटलं तद्वत्। स्पष्टा अभिरामा च प्रभा यस्याः सा तथोक्ता, ताम्। तेषां

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

पुरा मुखकमलकुहरात् भारतीसुरसरित्कल्लोललोलोर्म्मयः, अश्रान्तं सातत्येन प्रादुर्भवन्ति। भारत्येव नैर्मल्यात् अविच्छिन्नप्रवाहाच्च। सुरसरिद् भागीरथी, तस्याः कल्लोला असंख्योर्मयः, तद्वल्लोलाः प्रतिवादिसंमोहकरा उर्मयो निरन्तरवचनोत्कलिकाः; किंभूताः? विकटस्फुटाक्षरपदाः विकटानि शब्दार्थालङ्कारयुतानि शक्तिव्युत्पत्तिसहितानि गम्भीरप्रशस्तिसुन्दराणि वा, स्फुटानि झटित्यर्थप्रतिपादनसमर्थानि अक्षराणि पदानि यत्र तत् तथोक्ताः ॥ ८ ॥

इदानीमङ्गनावश्यार्थं रक्तध्यानमाह—

ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां ० ॥ ९ ॥

ये मनुजाः, हंहो भगवति! आस्तां तावत् चिरकालम्, मुहूर्तमपि त्वत्तेजसा भवत्या रक्ततेजःपुञ्जेन, इमां द्यां आकाशं सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितामिव, तथा इमां उर्वीमपि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव पश्यन्ति। दिवं पृथ्वीमपि आरक्तभवत्तेजोभिरापूरितामिव विलोकयन्ति। एकोऽपि इवशब्दो डमरुककलिकावद् द्विधा भिद्यते। किंभूताः? अनन्यमनसः ध्यानाद् अचलितचित्ताः। ननु तेषां किं फलमित्याह—तेषामित्यादि। तेषां पुंसां ध्रुवं निश्चितं अनङ्गज्वरक्लान्ताः स्मरज्वरतापोद्भ्रमरिताः कुरङ्गशावकदृशः तरुणहरिणलोचनाः अङ्गनाः स्त्रियः वश्याः, तदनुशरणत्वात् तच्छरणा एव भवन्ति ॥ ९ ॥

इदानीं श्रीजननं ध्यानविशेषमाह—

चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरां ० ॥ १० ॥

अहो स्वामिनि! ये मर्त्याः क्षणमात्रमप्येवंविधां भगवतीं त्वां चेतसि निश्चलीकृत्य ध्यायन्ति। किंभूताम्? चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधराम्-चञ्चन्ति शोभमानानि हिरण्यमयानि कुण्डलाङ्गदानि तानि धारयसीति। तथा आबद्धकाञ्चीस्रजं धृतरसनाकलापाम्। किंभूते चेतसि? तद्गते ध्याननिश्चले। ननु तेषां किं फलं स्यादित्याह—तेषां पुरुषाणां वेश्मसु गृहेषु संपदोऽहरहः स्फारीभवन्ति। प्रतिदिनं वर्धमानाः, चिरं बहुकालात्, विभ्रमात् त्वत्प्रसादादरेण स्थिरीभवन्ति। श्रियस्तस्मादन्यत्र न गच्छन्तीत्यर्थः। तर्हि स्वभावादेव निश्चला भविष्यन्ति। किंभूताः? माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः मत्तगजेन्द्रकर्णतालवत् चपला अपि। चञ्चु इत्यादिदण्डकधातुरनेकार्थत्वाद् धातूनां शोभार्थेऽपि। तथा च माघमहाकाव्ये—हेमच्छच्छायचञ्चच्छिखाग्रः ॥ १० ॥

इदानीं मुक्तिदं ध्यानमाह—

आर्भट्या शशिखण्डमण्डितजटा ० ॥ ११ ॥

हंहो भगवति! स्वामिनि! ये मानवा इत्थंरूपां भवतीं आर्भट्या अत्यादरेण ध्यायन्ति स्मरन्ति। कथंभूताम्? शशिखण्डमण्डितजटाजूटां चन्द्रार्धालंकृतजटामुकुटाम्; ॥१॥ नृमुण्डस्रजं नरमुण्डमालाधराम्; बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां बन्धूकजीवकुसुमारुणनिवसनपिहिताम्; तथा प्रेतासनाध्यासिनीं शवारूढाम्; तथा चतुर्भुजां बाहुचतुष्टयाङ्किताम्; तथा त्रिनयनां लोचनत्रिकविभूषिताम्; तथा आपीनतुङ्गस्तनीं पीवरोन्नतकुचाम्; तथा मध्ये विलग्नप्रदेशे, निम्नवलित्रयाङ्कितननुं निम्नोन्नतरेखात्रयाङ्कितशरीराम्। ननु तेषां किं फलं स्यादित्याह—त्वद्रूपसंवित्तये तदुक्तोपन्यस्तं यत् त्वदीयं रूपं तस्य संवित्तिः, विद लाभे इत्यस्य रूपम्, प्राप्तिस्तदर्थम्। प्रतिपादितरूपध्यानविशेषावाप्तपरमात्मशक्तिलक्षणदर्शनात् क्षीणकर्माणो मुक्तिमेव प्रतिपद्यन्ते इत्यर्थः ॥ ११ ॥

इदानीं पूर्ववृत्तकथनेन देव्याः प्रसादफलसंपत्तिमाह—

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभृतां ० ॥ १२ ॥

हंहो भगवति! यत् पुरा श्रीवत्सराजः श्रीवत्सानां देशविशेषाणां राजा उदयनो नामा बभूव। तर्हि अनवाप्तप्रतिष्ठो भविष्यतीत्याह—निःशेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा=निश्शेषावनौ समस्तभूमौ चक्रवर्तिपदवीं सार्वभौमत्वं प्राप्य। तर्हि प्रतापरहितो भविष्यतीत्याह—प्रतापोन्नतः=प्रतापाग्निना भस्मीकृतशत्रुः सर्वोत्कृष्टः, अत एव विद्याधरवृन्दवन्दितपदः नमद्देवविशेषमण्डलमुकुटकिरणनिकराऽलंकृतचरणारविन्दः। तर्हि पुरा एवंविधो भविष्यतीत्याह—अल्पपरिच्छदोऽपि प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तित्रयहीनोऽपि। अनुचितमिदम्। तत् कस्य प्रभाव इत्याह—सोऽयं प्रसादोदयः=सोऽयं पूर्वोक्तः सार्वभौमादिरुदयस्तव प्रसादादजनिष्ट। ननु प्रसादः कथमभूत्? इत्याह—त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः=तव चरणावेव सौकुमार्यादारक्तत्वाच्च अम्बुजे तयोः प्रणतिर्भक्तिपूजाराधनाद्युपचारः तस्माज्जातः ॥ १२ ॥

इदानीं परमेश्वर्याः पूजनात् फलविशेषमाह—

चण्डि! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते ० ॥ १३ ॥

अहो चण्डि! येषां पुरुषाणां हस्ताः, त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते—त्वत्पादपद्मपूजार्थम्, बिल्वीदलोल्लुण्टनात् त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः—बिल्वीदलानां तरुविशेषपत्राणां उल्लुण्टनेन अवचयेन त्रुट्यन्तो विच्छिद्यमानाः कण्टककोटयस्ताभिः समं परिचयं तत्पाटने नित्याभ्यासं न ययुः। अत्र कोटिशब्देन अग्रनखाः संख्या वोच्यते। ते पुमांस एवंविधैः चक्रवर्तिचिह्ननिवहवाहिभिः करैरुपलक्षिताः पृथ्वीभुजो भूपालाः कथमिव भवन्ति, अपि तु न कथञ्चित्। इवशब्दोऽत्र वाक्यालङ्कारे। तथा किरातार्जुनीये—

'कथमित्र तव सन्ततिर्भवित्री सममृतुभिर्मुनिनावधीरितस्य'

तान्येव सार्वभौमचिह्नान्याह—दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितैरम्भोजप्रभैश्च। तथा रघुकाव्ये—

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

'तै रेखाध्वजकुलिशातपत्रविह्नैः सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम् ॥' १३ ॥

इदानीं चतुर्वर्णानां पूजाधिकारेण चिन्तितसिद्धिमाह –

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे ० ॥ १४ ॥

अहो देवि त्रिपुरे! येषां ब्राह्मणादीनां चतुर्वर्णानाम्, मनः अन्तःकरणं चित्तम्, यां यां दुर्लभां सुलभां वा सिद्धिं प्रार्थयते अभिलषति। तर्हि ते चलचित्ता भविष्यन्तीत्याह – स्थिरधियां त्वद्भक्तिदृढमतीनाम्। ते विप्रादिवर्णाः, ध्रुवं निश्चितं तरसा वेगेन, तां तां पूर्वाभिलषितां अर्थसिद्धिं प्राप्नुवन्ति लभन्ते। ननु अन्तरायाः कथं नोत्पद्यन्ते इत्याह – विघ्नैः प्रत्यूहव्यूहैरविघ्नीकृताः त्वत्प्रसादादनुपहताः। तमेव वर्णानुक्रममाह – विप्रा इत्यादि। विधिवत्पूजनविधौ विप्राः ब्राह्मणाः क्षीरेण, क्षोणीभुजः क्षत्रियाः आज्येन, वैश्या मधुना, तदितरे शूद्रा ऐक्षवेण इक्षुरसेन च त्वां भवतीं संतर्प्यपित्वा। किंभूताम्? परां उत्कृष्टाम्, तथा परापरकलां परतः शक्तिम् ॥ १४ ॥

इदानीं परमैश्वर्या अर्वाचीनपराचीनावस्थामाह –

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने ० ॥ १५ ॥

अहो जननि! अर्वाचीने पदे अत्र भुवने त्रिजगति, शब्दजननी वाग्भवबीजरूपत्वात् वाग्वादिनीतिरूपनाम पौराणिकैः त्वमुच्यसे। अथ पराचीनावस्थामाह – ध्रुवं निःसंदेहं स्वर्गादौ, केशव-वासवप्रभृतयोऽपि देवाः, त्वतः सकाशादुत्पद्यन्ते। तथा कल्पान्ते प्रलये देवसंहारे, तेऽप्यमी स्वयंभूत्वेन सृष्टिकरणपालनसंहारकत्वेन सिद्धा ब्रह्मादयोऽपि, यत्र त्वयि, विलीयन्ते विलयं गच्छन्ति। संहारं प्राप्नुवन्ति। सा त्वं एवंविधा काचिदविज्ञेयस्वरूपा शक्तिः परा उत्कृष्टा गीयसे मुनिभिरुच्यसे। किंभूता? अचिन्त्यरूपगहना अचिन्त्यं वाग्-मनसोरप्यचिन्तनीयत्वात्, चिन्तया दुर्विज्ञेयं यद्रूपं तेन गहना दुर्बोधा ॥ १५ ॥

इदानीं जगन्मातुः सर्वगत्वं प्रतिपादयन्नाह –

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां ० ॥ १६ ॥

देवानां हरि-हर-ब्रह्मरूपाणां त्रितयम्; तथा हुतभुजां गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्नीनां त्रितयम्; शक्तीनां ब्राह्मणी-वैष्णवी-माहेश्वरीणाम्, इच्छा-ज्ञान-क्रियाणाम्, प्रभुमन्त्रोत्साहरूपाणां च त्रयम्; तथा त्रिस्वरा उदात्तानुदात्तसमाहाररूपलक्षणाः, अकार-उकार-बिन्दुरूपा वा तेषां त्रयम्; तथा त्रैलोक्यं त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्, भेषजादित्वात् स्वार्थे यण्। मूलाधिष्ठानमणिपूरक इति एको लोकः, अनाहतनिरोधविशुद्धिरिति द्वितीयो लोकः, आज्ञास्पर्शब्रह्मस्थानमिति तृतीयो लोकः, एषां त्रयम्; तथा त्रिपदी गायत्री, गंगा, विष्णुपदत्रयं वा। आदि-कान्तं खादिदान्तं धादि-क्षान्तं सप्तदशभिरक्षरैः पदं भवति। भूर्भुवःस्व रूपाणां त्रयम्। तथा त्रिपुष्करं त्रीणि पुष्कराणि हृदय-भ्रूमध्य-शिरःपद्मानां त्रयम्, तीर्थविशेषो वा। इडा पिंगला सुषुम्ना वा तासां त्रयम्, त्रिब्रह्म वेदत्रयम्। हृद्-व्योमद्वादशान्तःब्रह्मरन्ध्रान्तश्च। तथा वर्णत्रयः ब्राह्मणादयः। वाग्भव-कामराज-शक्तिबीजानि तेषां त्रयम्। अन्यदपि त्रिभुवने त्रिवर्गादिकम् – त्रिवर्गा धर्मार्थकामरूपाः। आदिशब्देन रति-प्रीति-मनोभवाः। दूतित्रयम्, पीठत्रयम्, मन्त्रत्रयम्, वृक्षत्रयम्, समुद्रत्रयम्, देवीत्रयम्, सिद्धित्रयम्, ध्यानधारणासमाधित्रयम्, नादबिन्दुकलात्रयम्, उदय-मध्य-सन्ध्यात्रयम्, भुवनत्रयम् – इत्यादि अन्यदपि यत्त्रिधा नियमितं वस्तु च विद्यते तत् समस्तं ज्ञानादि भगवति त्रिपुरेति नाम अन्वेति अनुगच्छति। अन्वाकारो यातः त्रीणि पुराणि भूर् भुवः स्वः; त्रीणि रूपाणि वाग्भव-कामराजशक्तिबीजानि, हृद्-भ्रूमध्य-शिरोरूपाणि वा यस्याः सा तथोक्ता। पूर्वं जगज्जननि त्रिधा स्थितं तदर्थं नाम। पश्चाद्देवादीनां पूर्वोपन्यस्तानां त्रितयानीति भावः ॥ १६ ॥

इदानीं स्मरणमात्रेण विपदुत्तारमाह –

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणमुखे ० ॥ १७ ॥

एतेषु वक्ष्यमाणस्थानेषु मानवा विपदस्तरन्ति आपदो विलंघयन्ति। किं कृत्वा? राजकुले राजभवने 'लक्ष्मीं' स्मृत्वा, तथा रणमुखे रणसंग्रामे संग्रामसंकटे 'जयां' नाम त्वाम्, तथा अध्वनि मार्गे 'क्षेमंकरीं' नाम त्वाम्, तर्हि मार्गः सौम्यो भविष्यतीत्याह – क्रव्याद‌द्विपसर्प्पभाजि=क्रव्यादा राक्षसाः द्विपाः वनकरिणः सर्प्पाः अजगरादयः तान् भजते तस्मिन् इति, तथा कान्तारदुर्गे विपिनेऽपि, गिरौ पर्वतवलये 'शबरीं' नाम त्वाम्, भूत-प्रेत-पिशाच-जृंभकभये भूत-प्रेत-पिशाच-जृंभका देवयोनिविशेषाः तेभ्यस्त्रासे सति 'महाभैरवीं' नाम त्वाम्, स्मृत्वा विचिन्त्य सर्वत्रापि योज्यम्। तथा व्यामोहे बुद्धिविप्लवे सति 'त्रिपुरां' नाम त्वाम्, तथा तोयविप्लवे 'तारां' नाम त्वाम्। एवं स्मृत्वा राजभुवनादिषु लक्ष्मीप्रभृतीनां त्वदङ्गानां अधिष्ठातृदेवीनां नाममात्रस्मरणेन विपदामपनयनमुचितम् ॥ १७ ॥

इदानीं परमेश्वर्याः प्रसिद्धानि कार्यारम्भसाधकानि नामान्याह कविः –

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती ० ॥ १८ ॥

मायादीनि नामानि प्रसिद्धानि स्थानक्रियाचरितमहिमोद्भूतानि। तथा त्वं माया परमात्मनः सहचरीत्यसि। तथा कुण्डलिनी अपवर्गदायिनी इत्यसि। तथा क्रिया सृष्टिपालनसंहाररूपा इत्यसि। तथा मधुमती या परमात्मनो ध्यानाग्निना प्रदग्धकर्मणो मुक्तिं प्रति जिगमिषोः संसारविषयभोगप्रदर्शिनी परमेश्वरविप्रलम्भिका त्वमसीत्यादिषूह्यम्। [अत्र प्रत्यन्तरे पुनरेतदधिकं पठ्यते – 'काली मातृणां

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

मध्ये । अथवा मुहूर्तिनी काली कलाबहुमितत्वात् । मालिनी आगमभेदेन । मातङ्गी शिवागमभेदेन । विजया जया तथैव । भगवती ज्ञानवती । मतान्तरे वा प्रसिद्धा कुब्जिका । देवी सर्वदेवेषु शक्तिरूपा । शिवा गौरी । शाम्भवी ब्राह्मी सरस्वती वा ।

शक्तिरूपं वदन्त्येके शिवरूपमथापरे ।
संयोगं च तयोरन्ये विवादा बहवो मताः ॥

शङ्करवल्लभा सर्वेषु रूपेषु भगवान् विमुक्तः(?) । त्रिनयना त्र्यक्षा । अथ त्रिमार्गा त्रिप्रकारा । वाग्वादिनी सर्वदेवेषु प्रोच्चारणीया । भैरवी भैरवरूपधारिणी दर्शनेन मतान्तरेण वा । ह्रींकारी ह्रींकारभावा । सा त्रिपुरा भक्तानां धर्मार्थकामान् पूरयतीति । परापरमयी वेदाङ्गप्रसिद्धा दर्शनभवा रम्या । माता जननी । कुमारी अपरिणीता त्वमसि । एतानि चतुर्विंशति नामानि स्मृत्वा, तथा पूर्वोक्तनामानि स्मृत्वा विपदस्तरन्ति ।

एते मन्त्रा मया प्रोक्ता आगमश्च स्वनामभिः ।
एतेषां स्मरणं कुर्वन्न कृच्छ्रेष्ववसीदति ॥'] ॥ १८ ॥

इदानीं परमेश्वर्य्या आगमोक्तनामान्याह—

आ ई पल्लवितैः परस्परयुतैः ० ॥ १९ ॥

अहो भैरवपत्नि! मातः! त्रिपुरे! यानि तव अत्यन्तगुह्यानि अतिदुर्बोधानि नामानि वर्तन्ते । कैः? अक्षरैः वर्णैः, किंभूतैः वर्णैः? काद्यैः कृत्वा । किंभूतैः काद्यैः? क्षान्तगतैः, स्वरादिभिः, अथ तैरक्षरैः, क्षान्तैः सस्वरैः, पुनः किंभूतैः? आ ई पल्लवितैः परस्परयुतैः, परस्परगुंफितैः आ ई शब्दान्तयोजितैः । तद्यथा—अकाई, अखाई, अगाई इत्यादि अक्षाई यावत् । आकाई, आखाई, आगाई, आघाई इत्यादि आक्षाई यावत् । इकाई, इखाई, इगाई, इघाई इत्यादि इक्षाई यावत् इत्यादि षोडशस्वरैः आदिभूतैः काद्यैः क्षान्तगतैः अक्षरैर्नामानि पुनरावृत्त्योच्चारेण षष्ठ्यधिकपञ्चशतानि भवन्ति । अथ क्षान्तैरक्षरैः सस्वरैः काद्यैः, यथा क का कि की कु कू कृ कॄ कॢ कॣ के कै को कौ कं कः । एवं सस्वरककादीनि क्षान्तानि यावत् । यथा ककाई, कखाई, कगाई, कघाई इत्यादि कक्षाई यावत् । काकाई, काखाई, कागाई, काघाई इत्यादि काक्षाई यावत् । किकाई, किखाई, किगाई, किघाई इत्यादि किक्षाई यावत् । कीकाई, कीखाई, कीगाई, कीघाई इत्यादि कीक्षाई यावत् । एभिः प्रकारैः षोडशस्वरैः परस्परयुतैस्तैरक्षरैरावृत्त्या एकोनविंशतिसहस्राणि षट्शताऽधिकानि अभियुक्तैर्गणनया ज्ञातव्यानि । षोडशभिः पंचत्रिंशता गुणने ५६०, तेषामपि पंचत्रिंशता गुणने १९६००, पश्चात् ५६० मीलने २०१६०, एकाराशौ विंशतिसहस्राणि षष्ट्यधिकशतोत्तराणि भवन्तीत्यत्र । अत उक्तं विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्योऽधिकेभ्य इत्यर्थः ।

पुनरेतेषामुत्तरषट्के दीर्घैः स्वरैरष्टभिः क्षकारात्प्रतिलोमैः वर्णैः लकारान्तैरष्टभिः 'क्षळहसषशवल'रूपैः कियन्त्येव नामानि कथितानि । यथा आक्षाई ईक्षाई ऊक्षाई ॠक्षाई ॡक्षाई ऐक्षाई औक्षाई अःक्षाई इत्यष्टौ । आळाई ईळाई ऊळाई ॠळाई ॡळाई ऐळाई औळाई अःळाई इत्यष्टौ । आहाई ईहाई ऊहाई ॠहाई ॡहाई ऐहाई औहाई अःहाई इत्यष्टौ । आसाई ईसाई ऊसाई ॠसाई ॡसाई ऐसाई औसाई अःसाई इत्यष्टौ । आषाई ईषाई ऊषाई ॠषाई ॡषाई ऐषाई औषाई अःषाई इत्यष्टौ । आशाई ईशाई ऊशाई ॠशाई ॡशाई ऐशाई औशाई अःशाई इत्यष्टौ । आवाई ईवाई ऊवाई ॠवाई ॡवाई ऐवाई औवाई अःवाई इत्यष्टौ । आलाई ईलाई ऊलाई ॠलाई ॡलाई ऐलाई औलाई अःलाई इत्यष्टौ ॥ ८ ॥ एवमष्टाष्टकविधानेन चतुःषष्टि नामानि एषा समूला विद्येति । एभ्यस्तव गुह्यनामभ्यः युगपन्नमस्कारो भवतु ॥ १९ ॥

इदानीं सामान्यविशेषक्रमोत्क्रमप्रकारेण बहुप्रकारं मन्त्रोद्धारमाह—

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं ० ॥ २० ॥

बुधैर्विद्वद्भिः त्रिपुरेति नाम्न्या भारत्याः सरस्वत्याः इयं स्तुतिर्लघुस्तवरूपा निपुणं अन्तर्दृष्टिकरणेन बोद्धव्या अवगन्तव्या । किं कृत्वा? तद्गतं तदेकाग्रं मनः कृत्वा चित्तं [illegible] बोद्धव्या । केन? अनन्यमनसा स्थिरचित्तेन । तदेवाह—यत्रेत्यादि । यत्राद्ये प्रथमे वृत्ते तत्पादसंख्याक्षरैः एक-द्वि-त्रिपदक्रमेण मन्त्रोद्धारविधिः स्मृतः । प्रथमे पदे प्रथमपदं ऐंकारः, द्वितीये द्वितीयपदं क्लींकारः, तथा तृतीयपदे तृतीयपदं ह्सौंकारः । तथा विशेषसहितः इन्द्रायुधप्रभं ध्यानं ललाटमध्ये, शुक्लज्योतिर्ध्यानं शिरसि, सूर्यप्रभातुल्यं ध्यानं हृदये, पूर्वप्रतिपादितमेव । तथा सत्सम्प्रदायान्वितः क्वचित् सकार-हकार-रेफयुतः, क्वचिद् एकाक्षरः, क्वचित् सव्यञ्जनः, क्वचित् कूटस्थः, क्वचिदकूटस्थः, क्वचित् पृथक्, क्वचिदपृथक्, क्वचित् क्रमस्थः, क्वचिद् व्युत्क्रमस्थः । एवंप्रकारेण सम्प्रदायान्वितः । तथा चोक्तम्—उत्तरषट्केऽपि—

जीवासनगतं प्राणं कूटं माहेश्वरं पुनः । इति ।

जीवः सकारः, प्राणो हकारः । आसनं क्वचिदधस्ताद्भवति, क्वचिदुपरिष्टादपि स्यात् । तथा

कूटं तु मध्यमं शृङ्गं शक्तिबीजसमन्वितम् ।

तेन वाग्राजस्य सकारपूर्वकत्वं सिद्धम् । तदित्थमुद्धारे यादृशा वर्णाः सिद्धास्तादृशा अत्र एते वर्णा विपर्यस्ताः बोद्धव्याः । अत उद्धारे हि बीजाक्षरपूजाविधानेन ध्यान-लिपि-बिम्बस्य प्राधान्यम् । जपाभ्यासेन तदुद्धारस्तदिदं सारस्व-

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

तम् । तथा आक्षाई आळाई आहाई आसाई आषाई आशाई आलाई आवाई स्वतः सिद्धमेवेति लिपिस्थम् ।

उपरिस्थं यत् स्तोत्रस्य, तथा उच्चरतामधः ।
अधःस्थमक्षरं यत् स्यात्, तत् स्यादुपरि जल्पताम् ॥ इति ॥

[प्रत्यन्तरेऽत्र कियानधिकः पाठ उपलभ्यते । यथा – 'सत्संप्रदायान्वित इति त्रिपुराशब्देन समस्तवाङ्मय - चराचरजगत् - त्रिभुवनोत्पत्तिः एकाराक्षररूपा, क्षेत्रं त्रिरेखामयी योनिरभिधीयते । तथा च 'एषाऽसौ त्रिपुरा' इति जल्पता एकारो योन्याकारत्वेन दर्शितः । तदेषां देवानां त्रितयमित्यादिना ध्यानेन पूजनीया । श्रीखण्ड-रसादिना यथावदभिलिख्य उपासनीया बोद्धव्या । इत्येष एव उपासनाविधिः ।

अथ प्रकारान्तरम् – अष्टदलपद्ममालिख्य कर्णिकायां देवी, पत्रेषु अष्टवर्गा मातृका, तस्यामेवाष्टौ लोकपालाः, अष्टौ दिशः, अष्टौ नागकुलानि, आणिमाद्यष्टकम्, विद्याष्टकम्, कामाष्टकम्, सिद्धाष्टकम्, पीठाष्टकम्, योगिन्यष्टकम्, भैरवाष्टकम्, क्षेत्रपालाष्टकम्, समयाष्टकम्, धर्माष्टकम्, योगाष्टकम्, पूजाष्टकम्, यत्किंचिद् अष्टकं तत्सर्वं मातृकाष्टकवर्गकण्ठलग्नसंलीनं ज्ञातव्यम् । इति । इष्टार्थिनः कामार्थिनः कवित्वार्थिनः पूजयेयुः । सौभाग्यविभ्रमोर्जितराज्यैश्वर्यार्थिनस्तु कर्णिकायां परस्परसंवन्धोद्ग्रन्थिस्थितयोनिद्वयकोणान्तराले योनिपतितरेखात्रयनिर्मितोर्ध्वमुखतृतीययोनिसंस्थाने क्रमेण नवयोनिचक्रमालिख्य, यथापूर्वमध्ययोन्यन्तरालभूमौ 'परेभ्यो गुरुपदेभ्यो नमः । अपरेभ्यो गुरुपदेभ्यो नमः । परापरेभ्यो गुरुपदेभ्यो नमः ।' इति गुरुपङ्क्तिं प्रपूज्य, योनिमध्ये उड्डीयाणम्, दक्षिणकोणे जालन्धरम्, वामकोणे पूर्णगिरिपीठम्, पश्चिमकोणे कामरूपपीठम् – इति पीठचतुष्टयं संपूज्य, मध्ये ह्सौरिति सदाशिवमभ्यर्च्य, देवीं धर्म - ज्ञान - वैराग्य - ऐश्वर्य - वरदां इति पञ्चकं देव्या मूर्ध्नि पादावधिं विन्यस्य पूजयित्वा 'हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वोषट्, कवचाय हुं, नेत्रत्रयाय वषट्, अस्त्राय फट् ।' इति षडङ्गान्यङ्गेषु विन्यस्य पूजयित्वा, एतान्येव योगाङ्गानि देव्याः सन्निधौ बहिः पूर्वादितः अस्त्रं कोणेषु नेत्रमग्रतः पूजयेत् । ततो 'द्राँ द्रीँ क्लीँ ब्लूँ सः' – इति 'शोषण - मोहन - सन्दीपन - उन्मादन - तापनम्' इति वाणपञ्चकम्, मध्यम - पश्चिमयोन्यन्तरालभूमौ पूजयित्वा, ततो भगा सुभगा भगमालिनी भगसर्पिणी – इति पूर्वादियोनिचतुष्के, अनङ्गा अनङ्गकुसुमा अनङ्गमेखला अनङ्गमदना – इति आग्नेयादिचतुष्के, ऐंकारं प्रणवं कृत्वा, नमोऽन्तं प्रपूज्य, योनिमुद्रां दर्शयित्वा, बहिः पत्रेषु पूजयेत् ।

यदि वा समस्तजनप्रसिद्धक्रमायातमार्गेण ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही ऐन्द्री चामुण्डा चण्डिका । इति ।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तश्च भैरवः ।
कपालभीषणश्चैव संहारश्चाष्टमः स्मृतः ॥
इति द्वौ द्वौ एकत्र पत्रे संपूजयेदिति ॥ २० ॥]

इदानीं एतत्स्तोत्रस्य पाठमात्रे माहात्म्यमाह –

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा० ॥ २१ ॥

यतो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि संचितापि लघुत्वमात्मनि दृढं संजायमानं हठात्, एतत् स्तोत्रं सावद्यं दूष्यं निरवद्यमदूष्यं वा अस्तु । अनया दूष्यादूष्यस्य स्तवस्य चिन्तया वा किं कार्यं न किमपीत्यर्थः । अहो विश्वस्वामिनि ! यस्य कस्यापि जनस्य त्वयि विषये भक्तिरस्ति परमभावो विद्यते, स यतो निश्चितमिदं पूर्वोपन्यस्तं पाठमात्रेणोच्चारयिष्यति । पूजाध्यानादिक्रिया तावत् परतोऽस्तु । तस्यापि चिन्तितार्थप्राप्तिर्भविष्यतीत्यर्थः । इदानीं कविः स्वभणितं दृष्टान्तोपन्यासेन दृढयति – यस्मात् कारणात् ध्रुवं निश्चितं मया मूर्खेणापि, एतेन अबोद्धव्यकथनम्, मया स्तवनमिदं गुम्फितम् । तर्हि सुबोधं भविष्यतीत्याह – त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन, किं कृत्वा ? हठात् बलात्कारेण संजायमानं विस्फुरद् आत्मनि विषये दृढं दुर्निवारं लघुत्वं सारस्वतं स्फुरितं सश्चिन्त्य इति ॥ २१ ॥

॥ इति लघ्वाचार्यविरचितस्य लघुस्तवस्य पञ्जिका संपूर्णा ॥

*

अत्र लघुस्तवे २१ काव्यानि तेषां मन्त्रविधानं लिख्यते ।

॥ ॐ ऐँ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँ नमः ॥

ऐन्द्रस्येव० ॥ १ ॥ अस्य मन्त्रः 'श्रीँ क्लीँ ईश्वर्यै नमः' त्रिकालजापात् प्रभूता । या मात्रा० ॥ २ ॥ 'श्री वाङ्मय्यै नमः' त्रिकालजापात् पठनसिद्धिर्भवति । दृष्ट्वा संभ्रम० ॥ ३ ॥ '.........स्यैं वः क्रौं नमः' त्रिकालजापात् जगद्वश्यं भवति ।

यन्नित्ये तव० ॥ ४ ॥ 'ॐ वः सरस्वत्यै नमः' पाठमन्त्रोऽयम् ।

यत्सद्यो वचसां० ॥ ५ ॥ 'योगिन्यै नमः' सर्वापदाहरणम् ।

एकैकं तव० ॥ ६ ॥ 'ॐ धारकस्य सौभाग्यं कुरु कुरु स्वाहा' सौभाग्यमन्त्रः ।

वामे पुस्तक० ॥ ७ ॥ 'धरण्यै नमः सौभाग्यं कुरु कुरु स्वाहा ।' विशेषसौभाग्यमन्त्रः ।

ये त्वां पाण्डुर० ॥ ८ ॥ 'ऐँ क्लीँ श्रीँ धनं कुरु कुरु स्वाहा ।' जापात् धनवान् भवति ।

ये सिन्दूर० ॥ ९ ॥ 'ॐ ह्राँ ह्रीँ ह्रूँः पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा ।' त्रिकालजापात् पुत्रप्राप्तिर्भवति ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

चंचत्कांचन० ॥ १० ॥ 'ॐ ह्रीँ क्लीँ महालक्ष्म्यै नमः, जयं कुरु कुरु स्वाहा त्रिकालजापात् सर्वत्र जयो भवति ।

आर्भट्या० ॥ ११ ॥ 'ऐं क्लीँ नमः' त्रिकालजापात् कर्मक्षयो भवति; अशुभात् शुभं भवति ।

जातोऽप्यल्प० ॥ १२ ॥ 'ब्लूं द्रीं नमः' त्रिकालजापात् राज्यप्राप्तिर्भवति ।

चंडि त्वच्चरणां० ॥ १३ ॥ 'ह्सौं नमः' त्रिकालजापात् महाराजाधिराजत्वं भवति ।

विप्राः क्षोणि० ॥ १४ ॥ 'ॐ वाङ्मय्यै नमः' त्रिकालजापात् सर्वसमीहित-सिद्धिर्भवति ।

शब्दानां जननी० ॥ १५ ॥ 'ॐ श्रीँ भारत्यै नमः' वचनसिद्धिर्भवति ।

देवानां त्रितयं० ॥ १६ ॥ 'ॐ सरस्वत्यै नमः' जापात् विद्याप्राप्तिमन्त्रः ।

लक्ष्मीं राजकुले० ॥ १७ ॥ 'ॐ ह्रीं श्रीँ शारदायै नमः' चतुर्दशविद्याप्राप्तिः ।

माया कुंण्डलिनी० ॥ १८ ॥ 'ॐ हंसवाहिन्यै नमः' शारदा वरं ददाति ।

आ ई पल्लवितैः० ॥ १९ ॥ 'ॐ जगन्मात्रे नमः' त्रिकालजापात् शारदा संतोषवती भवति ।

बोद्धव्या निपुणं० ॥ २० ॥ 'ॐ भगवत्यै महावीर्यायै नमः, धारकस्य पुत्रवृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा' त्रिकालजापात् परिवारवृद्धिः ।

सावद्यं निरवद्य० ॥ २१ ॥ 'ॐ ऐं ॐ ऐं क्लीँ लक्ष्मीं कुरु कुरु स्वाहा' त्रिकालजापात् धनाढ्यता भवति ।

॥ इति लघ्वाचार्यविरचित-श्रीत्रिपुरास्तोत्रमन्त्रविधानं संपूर्णम् ॥

*

॥ श्रीलघुस्तवस्तोत्रस्य सिद्धसारस्वत ऋषिः, त्रिपुरभैरवी देवता, शार्दूल-विक्रीडितच्छन्दः, भुक्तिमुक्त्यर्थे विनियोगः ॥

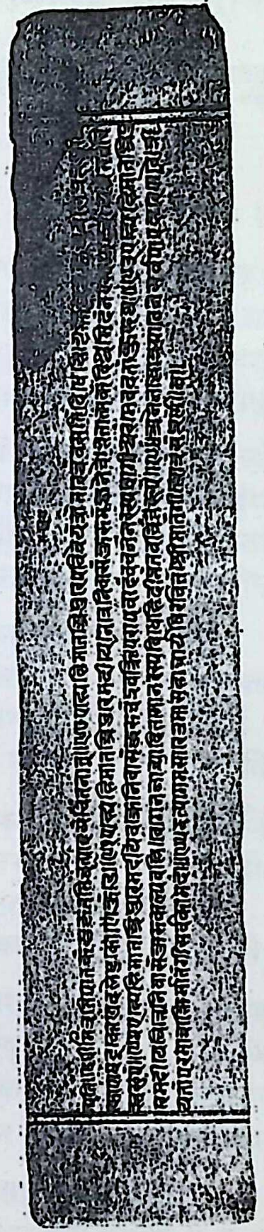

मातङ्गीस्तोत्र की पुरातन आदर्शभूत प्रतिकी प्रतिकृति

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

उमासहाचार्यविरचितं

मातङ्गी स्तोत्रम् ।

॥ ॐ क्लीं मातङ्ग्यै नमः ॥

मातङ्गीं नवयावकार्द्रचरणां प्रोल्लासिकृष्णांशुकां
वीणागोल्लासिकरां समुन्नतकुचां मुक्ताप्रवालावलीम् ।
हृद्याङ्गीं सितशङ्खकुण्डलधरां बिम्बाधरां सुस्मितां
आकीर्णालकवेणिमञ्जनयनां ध्यायेत् शुक-श्यामलाम् ॥ १ ॥

कलार्धांशोत्तंसां करकलितवीणाहितरसां
कलिन्दापत्याभां कलितहृदयारक्तवसनाम् ।
पुराणीं कल्याणीं पुरमथनपुण्योदयकलां
अघोराक्षीमेनामवटुतटसन्नद्धकबरीम् ॥ २ ॥

करोदञ्चाद्वीणं कनकदलताडङ्कनिहितं
स्तनाभ्यामानम्रं तरुणमिहिरारक्तवसनम् ।
महः कल्याणं तन्मधुमदभराताम्रनयनं
तमालश्यामं नः स्तबकयतु सौख्यानि सततम् ॥ ३ ॥

कराञ्चितविपञ्चिकां कलितचन्द्रचूडामणिं
कपोलविलसन्महःकनकपत्रताडङ्किनीम् ।
तपःकलमधीशितस्तरुणभानुरक्ताम्बरां
तमालदलमेचकां तरललोचनामाश्रये ॥ ४ ॥

कस्तूरीरचिताभिरामतिलका कल्याणताडङ्किनी
बाला शीतमयूखशोणवसना प्रालम्बिधम्मिल्लका ।
हारोद्भासितपीवरस्तनतटा हालामदोल्लासिनी
श्यामाभा काचन कामिनी विजयते चञ्चद्विपञ्चीकरा ॥ ५ ॥

माता मरकतश्यामा, मातङ्गी मृदुभाषिणी ।
कटाक्षये तु कल्याणी कदम्बवनवासिनी ॥ ६ ॥

शृङ्गे सुमेरोः सञ्चारिणीभिर्गीयन्ति मातङ्गि तवावदानम् ।
आमोदिनीमात्तरसामापिबन्तः कादम्बरीमम्बरवासिनस्ते ॥ ७ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

एकेन चापमपरेण करेण बाणा-
न्नन्येन पाशमितरेण शृणिं दधाना ।
आनन्दकन्दलितविद्रुमबालवल्ली
संविन्मयी स्फुरतु काचन देवता मे ॥ ८ ॥

गजदानकलङ्किकण्ठमूला
कवरीवेष्टनकाङ्क्षणीयगुञ्जा ।
कुरुताद् दुरिताद् विमोक्षणं मे
कुहुना भिल्लकुटुम्बिनी भवानी ॥ ९ ॥

पाणौ मृणालसगुणं दधतीक्षुचापं
पृष्ठे लसत्कनककेतकबाणकोशौ ।
अङ्गे प्रवालकवचं वनवासिनी सा
पञ्चाननं मृगयते कदलीवनान्ते ॥ १० ॥

वामे विस्तृतिशालिनि स्तनतटे विन्यस्य वीणामुखं
तन्त्रीं तारविराविणीमसकलैरास्फालयन्ती नखैः ।
अर्द्धोन्मीलदपाङ्गदिक्षुवलितग्रीवं मुखं बिभ्रती
माया काचन मोहिनी विजयते मातङ्गकन्यामयी ॥ ११ ॥

प्रतिक्षणपयोधर-प्रविलसद्विपञ्चीगुण-
प्रसारि करपंकजं वलभिदश्मपुञ्जोपमम् ।
कदम्बवनमालिकाशशिकलासमुद्भासितं
मतङ्गकुलमण्डनं मनसि मे महो जृम्भताम् ॥ १२ ॥

लाक्षालोहितपादपङ्कजदलामापीनतुङ्गस्तनीं
कर्पूरोज्ज्वलचारुशङ्खवलयां काश्मीरपत्राङ्कुराम् ।
तन्त्रीताडनपाटलाङ्गुलिदलां वन्दामहे मातरम्
मातङ्गीं मदमन्थरां मरकतश्यामां मनोहारिणीम् ॥ १३ ॥

स्रस्तं केशरदामभिर्वलयितं धम्मिल्लमाबिभ्रती
तालीपत्रपुटान्तरैः सुघटितैस्ताडङ्किनी मौक्तिकैः ।
मूले कल्पतरोर्मदस्खलितदृग् दृष्ट्यैव संमोहिनी
काचिद् गायनदेवता विजयते वीणावती वासना ॥ १४ ॥

यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य यत्कर्णिकान्तर्
ज्योतिस्तस्याप्युदरकुहरे यत्तदोङ्कारपीठम् ।
तस्याप्यन्तः स्तनभरनतां कुण्डलीति प्रसिद्धां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ॥ १५ ॥

निर्निद्रो निशि बलिमस्यै भुक्तशेषेण दत्त्वा
मनु मनु गणनातो मन्त्रजापं वितन्वन् ।
भवति नृपतिपूज्यो योषितां प्रीतिपात्रं
व्रजति च पुनरन्ते शाश्वतीं मूर्तिमाद्याम् ॥ १६ ॥

कान्तारन्ति पयोधयो विषधराः कर्पूरहारन्ति च
श्रीखण्डन्ति दवानला वनगजाः सारङ्गशावन्ति च ।
दासन्त्यद्भुतशात्रवाः किमपरं पुष्यन्ति वस्त्राण्यपि
श्रीदामोदरसोदरे भगवति ! त्वत्पादनिष्ठात्मनाम् ॥ १७ ॥

कुवलयनिभा कौशेयार्द्धोरुका मुकुटोज्ज्वला
हलमुशलिनी सद्भक्तेभ्यो वराभयदायिनी ।
कपिलनयना मध्येक्षामा कठोरघनस्तनी
जयति जगतां मातः ! सा ते वराहमुखी तनुः ॥ १८ ॥

अमृतमहोदधिमध्ये रत्नद्वीपे सकल्पवृक्षवने ।
नवमणिमण्डपमध्ये मणिमयसिंहासनस्योर्द्ध्वम् ॥ १९ ॥

मातङ्गीं भूषिताङ्गीं मधुमदमुदितां घूर्णमाणाक्षियुग्माम्
स्विद्यद्वक्त्रां कदम्बप्रसवपरिलसद्वेणिकामात्तवीणाम् ।
बिम्बोष्ठीं रक्तवस्त्रां मृगमदतिलकामिन्दुलेखावतंसाम्
कर्णोद्यच्छङ्खपत्रां कठिनकुचभराक्रान्तकान्तावलग्नाम् ॥ २० ॥

उन्मीलद्यौवनाढ्यां निबिडमदभरोद्वेगलीलावकाशाम्
रत्नग्रैवेयहाराङ्गदकटककटीसूत्रमञ्जीरभूषाम् ।
आनीयार्थानभीष्टान् स्मितमधुरदृशा साधकं तर्पयन्तीं
ध्यायेद् देवीं शुकाभां शुकमखिलकलारूपमस्याश्च पार्श्वे ॥ २१ ॥

अमृतोदधिमध्येऽत्र रत्नद्वीपे मनोरमे ।
कदम्बबिल्वनिलये कल्पवृक्षोपशोभिते ॥ २२ ॥

तस्य मध्ये सुखास्तीर्णे रत्नसिंहासने शुभे ।
त्रिकोणकर्णिकामध्ये तद्बहिः पञ्चपत्रकम् ॥ २३ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

अष्टपत्रं महापद्मं केसराढ्यं सकर्णिकम् ।
तत्पार्श्वेऽष्टदलं प्रोक्तं चतुःपत्रं पुनः प्रिये ॥ २४ ॥

चतुरस्रं च तद्बाह्ये एवं देव्यासनं भवेत् ।
तस्य मध्ये सुखासीनां श्यामवर्णां शुचिस्मिताम् ॥ २५ ॥

कदम्बमालापरितः प्रान्तबद्धशिरोरुहाम् ।
प्रालम्बालकसंयुक्तां चन्द्रलेखावतंसकाम् ॥ २६ ॥

ललाटतिलकोपेतां ईषत्प्रहसिताननाम् ।
किञ्चित्स्वेदाम्बुरचितललाटफलकोज्वलाम् ॥ २७ ॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्थरोमराजिविराजिताम् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तां सर्वाभरणभूषणाम् ॥ २८ ॥

नूपुरै रत्नखचितैः कटिसूत्रैरलङ्कृताम् ।
वलयै रत्नरचितैः केयूरैर्मणिभूषणैः ॥ २९ ॥

भूषितां द्विभुजां बालां मदाघूर्णितलोचनाम् ।
वादयन्तीं सदा वीणां शङ्खकुण्डलभूषणाम् ॥ ३० ॥

प्रालम्बिकर्णाभरणां कर्णोत्तंसविराजिताम् ।
यौवनोन्मादिनीं वीरां रक्तांशुकपरिग्रहाम् ॥ ३१ ॥

तमालनीलां तरुणीं मदमत्तां मतङ्गिनीम् ।
चतुःषष्टिकलारूपां पार्श्वस्थशुकसारिकाम् ॥ ३२ ॥

मातङ्गेशीं महादेवीं निःश्वस्यैनान्तरात्मना ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां जपाकुसुमसन्निभाम् ॥ ३३ ॥

अथवा पीतवर्णां च श्यामामेवापरां श्रये ।
निष्पापस्य मनुष्यस्य किं न सिद्ध्यति भूतले ॥ ३४ ॥

कामवच्चरते भूमौ साक्षाद् वैश्रवणायते ।
गद्यपद्यमयी वाणी तस्य वक्त्राद् विनिर्गता ॥ ३५ ॥

भैरवी त्रिपुरा लक्ष्मीर्वाणी मातङ्गिनीति च ।
पर्यायवाचका ह्येते सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३६ ॥

त्रिक-पञ्चकाष्टयुगलं षोडशकोष्ठाष्टकं चतुःषष्टौ ।
ध्यात्वाऽङ्गदेवतानां देव्याः परितो यजेत भावेन ॥ ३७ ॥

मातङ्गि ! मातरीशे ! मधुमथनाराधिते ! महामाये ! ।
मोहिनि ! मोहप्रमथिनि ! मन्मथमथनप्रिये नमस्तेऽस्तु ॥ ३८ ॥

स्तुतिषु तव देवि ! विधिरपि विहितमतिर्भवति [चा]प्यविहितमतिः ।
यद्यपि भक्तिर्मामपि भवतीं स्तोतुं विलोभयति ॥ ३९ ॥

यतिजनहृदयावासे ! वासववन्द्ये वराङ्गि मातङ्गि ! ।
वीणावाद्यविनोदैर्नारदगीते ! नमो देवि ! ॥ ४० ॥

देवि ! प्रसीद सुन्दरि पीनस्तनि कम्बुकण्ठि घनकेशि ! ।
श्यामाङ्गि विद्रुमोष्ठि स्मितमुखि मुग्धाक्षि मौक्तिकाभरणे ! ॥ ४१ ॥

भरणे त्रिविष्टपस्य प्रभवसि तत एव भैरवी त्वमसि ।
त्वद्भक्तिलब्धविभवो भवति क्षुद्रोऽपि भुवनपतिः ॥ ४२ ॥

पतितः कृपणो मूकोऽप्यम्ब ! भवत्याः प्रसादलेशेन ।
पूज्यः सुभगो वाग्मी भवति जडश्चापि सर्वज्ञः ॥ ४३ ॥

ज्ञानात्मके जगन्मयि निरञ्जने नित्यशुद्धपदे ! ।
निर्वाणरूपिणि परे त्रिपुरे ! शरणं प्रपन्नस्त्वाम् ॥ ४४ ॥

त्वां मनसि क्षणमपि यो ध्यायति मुक्तावृतां श्यामाम् ।
तस्य जगत्त्रयेऽस्मिन् कास्ता या न स्त्रियः साध्याः ॥ ४५ ॥

साध्याक्षरान्वितपञ्चनवत्यक्षरात्मिके जगन्मातः ! ।
भगवति मातङ्गेश्वरि ! नमोऽस्तु तुभ्यं महादेवि ! ॥ ४६ ॥

विद्याधरसुरकिन्नरगुह्यकगन्धर्वसिद्धयक्षवरैः ।
आराधिते ! नमस्तेऽस्तु प्रसीद कृपयैव मातङ्गि ! ॥ ४७ ॥

मातङ्गीस्तुतिरियमन्वहं प्रजप्ता
जन्तूनां वितरति कौशलं क्रियासु ।
वाग्मित्वं श्रियमधिकां च मानशक्तिम्
सौभाग्यं नृपतिभिरर्चनीयतां स याति ॥ ४८ ॥

मातङ्गीमनुदिनमेवमर्चयन्तः
श्रीमन्तः सुभगतराः कवित्वभाजः ।
प्राप्यान्ते सकलसमीहितार्थवर्गं
देहान्ते विमलतरं विशन्ति धाम ॥ ४९ ॥

अवदुतटघटितचोलीं ताडितताडीं पलाशताडङ्काम् ।
वीणावादनवेलाकम्पितशिरसं नमामि मातङ्गीम् ॥ ५० ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

वीणावादननिरतं तदलाबुस्थगितवामकृतकुचम् ।
श्यामलकोमलगात्रं पाटलनयनं परं भजे धाम ॥ ५१ ॥

अङ्कितपाणिचतुष्टयमङ्कुशपाशेक्षुपुष्पचापशरैः ।
शङ्करजीवितमित्रं पङ्कजनयनं परं भजे धाम ॥ ५२ ॥

करकलितकनकवीणालाबुककदलीकृतैककुचकमला ।
जयति जगदेकमाता मातङ्गी मङ्गलायतना ॥ ५३ ॥

अङ्कलालितमनङ्गविद्विषस्तुङ्गपीनकुचभारभङ्गुरम् ।
श्यामलं शशिनिभाननं भजे कोमलं कुटिलकुन्तलं महः ॥ ५४ ॥

वीणावाद्यविनोदगीतनिरतां लीलाशुकोल्लासिनीं
बिम्बोष्ठीं नवयावकार्द्रचरणामाकीर्णकेशालकाम् ।
हृद्याङ्गीं सितशङ्खकुण्डलधरालङ्कारवेषोज्ज्वलां
मातङ्गीं प्रणतोऽस्मि सुस्मितमुखीं देवीं शुकश्यामलाम् ॥ ५५ ॥

वेणीमूलविराजितेन्दुशकलां वीणानिनादप्रियाम्,
क्षोणीपालसुरेन्द्रपन्नगगणैराराधितां हृद्ययाम् ।
एणीचञ्चललोचनां सुवदनां वाणीं पुराणोज्ज्वलाम्,
श्रोणीभारभरालसामनिमिषां पश्यामि विश्वेश्वरीम् ॥ ५६ ॥

कुचकलशनिषण्णकेलिवीणाम् कलमधुरध्वनिकंपितोत्तमाङ्गीम् ।
मरकतमणिभङ्गमेचकाभाम् मदनविरोधिमनस्विनीमुपासे ॥ ५७ ॥

ताडीदलोल्लसितकोमलकर्णपालीम् केशावलीकलितदीर्घसुनीलवेणीम् ।
वक्षोजपीठनिहितोज्ज्वलनादवीणाम् वाणीं नमामि मदिरारुणनेत्रयुग्माम् ॥ ५८ ॥

यामामनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीम् विद्येति यां श्रुतिरहस्यविदो गृणन्ति ।
तामर्द्धपल्लवितशंकररूपमुद्राम् देवीमनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये ॥ ५९ ॥

यः स्फाटिकाक्षवरपुस्तककुण्डिकाढ्याम्
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम् ।
पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातः ! स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती ॥ ६० ॥

वर्हावतंसघनबन्धुरकेशपाशाम्
गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभाम् ।
श्यामां प्रवालवसनां शरचापहस्ताम्
तामेव नौमि शवरीं शबरस्य नाथाम् ॥ ६१ ॥

अज्ञातसम्भवमनाकलितान्ववायम्
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्वितीयम् ।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतो भवत्याः
शम्भुः क एव बुबुधे गिरिराजकन्ये ! ॥ ६२ ॥

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ ।
वेतालसंहतिपरिग्रहतां च शम्भोः
शोभां वहन्ति गिरिजे ! तव साहचर्यात् ॥ ६३ ॥

गले गुञ्जाबीजावलिमपि च कर्णे शिखिशिखाम्
शिरो रङ्गे नृत्यत्कनककदलीमञ्जुलदलम् ।
धनुर्वामे चांसे शरमपरपाणौ च दधतीम्
नितम्बे बर्हालीं कुटिलकबरीं सिद्धशबरीम् ॥ ६४ ॥

लसद्गुञ्जापुञ्जाभरणकिरणारक्तनयनाम्
जपाकर्णाभूषां शिखिवरकलापाम्बरवतीम् ।
नदज्झल्लीपल्लीवनतरुदलैः संपरिवृताम्
नमामि वामोरुं कुटिलकबरीं सिद्धशबरीम् ॥ ६५ ॥

अपर्णाहोपर्णा सिरसकदलीसंभवमलम्
भवं जेतुं प्रौढिं किल मनसि बाला विदधती ।
नदज्झल्लीपल्लीवनतरुषु हल्लीसकरुचि-
र्लसत्पल्लीभिल्ली करकलितभल्ली विजयते ॥ ६६ ॥

धनिनामनिशाभवन्मदानाम्, भवनद्वारि दुराशया शयानाम् ।
अवलोकय मामगेन्द्रकन्ये ! करुणाकन्दलितैः कटाक्षमोक्षैः ॥ ६७ ॥

कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशम्
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम् ।
वि[illegible]ति बहुभिरुच्चैस्त्वत्स्वरूपं पदं नः
सकलजननि मातः ! संततं सन्निधत्ताम् ॥ ६८ ॥

मिथः केशाकेशि प्रधननिधनास्तर्कघटना
बहुश्रद्धाभक्तिप्रणतिविषयाश्चाप्तविधयः ।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते ! देहि शरणम्
निरालम्बे ! चेतः परिलुठति पारिप्लवमिदम् ॥ ६९ ॥

लसद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिका-
मुदञ्चद्घर्माम्भःकणगुणितवक्त्राम्बुजरुचम् ।
शिवं पार्थत्राणप्रणवमृगयाकारकरणम्
शिवामन्वक्यान्तीं शरणमहमन्वेमि शबरीम् ॥ ७० ॥

शिरसि धनुरटन्या ताड्यमानस्य शम्भो-
रलक-नयन-कोणे किञ्चिदालज्यमाने ।
उपनिषदुपगीतं रुद्रमुद्घोषयन्ती
परिहरति मृडानी मध्यमं पाण्डवानाम् ॥ ७१ ॥

यद्गलाभरणतन्तुवैभवान् नायको गरलमागलं पपौ ।
तां चराचरगुरोः कुटुम्बिनीम् नौमि यौवनभरेण लालसाम् ॥ ७२ ॥

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयहरा मृत्युहरणीम्
विपद्यन्ते सर्वे विधि-शतमखाद्या दिविषदः ।
करालं यत् क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना
न शम्भोस्तन्मूलं जननि ! तव ताडङ्कमहिमा ॥ ७३ ॥

करोपान्ते कान्ते वितरणिनिशान्ते विदधतीम्
लसद्वीणाशोणां नखरुचिभिरेणाङ्कवदनाम् ।
सदा वन्दे संदेतरुरुहवशंदेशकवशात्
कृपालम्वामम्वां कुसुमितकदम्वाङ्गणगृहाम् ॥ ७४ ॥

कर्णलम्बितकदम्वमञ्जरीकेसरारुणकपोलमण्डलम् ।
केवलं निगमवादगोचरं नीलिमानमवलोकयामहे ॥ ७५ ॥

अकृशं कुचयोः कृशं विलग्ने विपुलं चक्षुषि विस्तृतं नितम्वे ।
अरुणाधरमाविरस्तु चित्ते करुणाशालिकपालिभागधेयम् ॥ ७६ ॥

घनभङ्गुरकेशपाशमम्ब ! प्रभया कीचकमेचकं वपुस्ते ।
परितः परितो विलोकयामः प्रतिपच्चन्द्रकलाधिरूढचूडम् ॥ ७७ ॥

ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामगात्रीम्
न्यस्तैकाङ्घ्रीसरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम् ।
कह्लारावद्धमालां नियमितविलसच्चूलिकां रक्तवस्त्राम्
मातङ्गीं शङ्खपत्रां मधुमदविवशां चित्रकोद्भासिभालाम् ॥ ७८ ॥

आराध्य मातश्चरणाम्बुजं ते ब्रह्मादयो विश्रुतकीर्तिमापुः ।
अन्ये परं वाग्विभवं मुनीन्द्राः परां श्रियं भक्तिभरेण चान्ये ॥ ७९ ॥

नमामि देवीं नवचन्द्रमौलिम् मातङ्गिनीं चन्द्रकलावतंसाम् ।
आम्नायवाग्भिः प्रतिपादितार्थम् प्रवोधयन्तीं शुकमादरेण ॥ ८० ॥

विनम्रदेवासुरमौलिरत्नैर् नीराजितं ते चरणारविन्दम् ।
भजन्ति ये देवि ! महीपतीनाम् परां श्रियं भक्तिमुपाश्रयन्ति ॥ ८१ ॥

मातङ्गि ! लीलागमने ! भवत्याः संजातमञ्जीरमिषाद् भजन्ते ।
मातस्त्वदीयं चरणारविन्दम् अकृत्रिमाणां वचसां विगुम्फाः ॥ ८२ ॥

पदात्पदं शिञ्जितनूपुराभ्याम् कृतार्थयन्ती पदवीं पदाभ्याम् ।
आस्फालयन्ती कलवल्लकीं ताम् मातङ्गिनी मे हृदयं धिनोतु ॥ ८३ ॥

लीलांशुकावद्धनितम्वविम्वाम् ताडीदलेनार्पितकर्णभूषाम् ।
माध्वीमदाघूर्णितनेत्रपद्माम् घनस्तनीं शम्भुवधूं स्मरामि ॥ ८४ ॥

तडिल्लताकान्तमलब्धभूषम्, चिरेण लक्ष्यं नवरोमराज्या ।
स्मरामि भक्त्या जगतामधीशि ! वलित्रयाङ्कं तव मध्यमम्ब ! ॥ ८५ ॥

नीलोत्पलानां श्रियमाहरन्तीम् कान्त्याः कटाक्षैः कमलाकराणाम् ।
कदम्वमालाञ्चितकेशपाशाम् मातङ्गकन्यां हृदि भावयामि ॥ ८६ ॥

ध्यायेयमारक्तकपोलकान्तम् विम्वाधरं न्यस्तललाटरम्यम् ।
आलोललीलायितमायताक्षम् मन्दस्मितं ते वदनं महेशि ! ॥ ८७ ॥

वामस्तनासक्तसखीं विपञ्चीम् उद्घाटयन्तीमरुणाङ्गुलीभिः ।
तदुत्थसौभाग्यविलोलमौलिम् श्यामां भजे यौवनभारखिन्नाम् ॥ ८८ ॥

स्तुत्यानया शंकर-धर्मपत्नीम् मातङ्गिनीं वागधिदेवतां ताम् ।
स्तुवन्ति ये भक्तियुता मनुष्याः परां श्रियं भक्तिमुपाश्रयन्ति ॥ ८९ ॥

गेहं नाकति गर्वितः प्रणमति स्त्रीसंगमो मोक्षति,
मृत्युर्वैद्यति दूषणं च गुणति क्ष्मावल्लभो दासति ।
वज्रं पुष्पति पन्नगोऽञ्जनलति हालाहलं भुज्यति,
द्वेषी मित्रति पातकं सुकृतति त्वत्पादसंचिन्तनात् ॥ ९० ॥

एह्येहि मातस्त्रिपुरे पवित्रे ! यन्त्रान्तरे त्वं वसतिं विधेहि ।
गृह्णस्व गृह्णस्व बलिं प्रपूजाम् त्रिकोणषट्कोणदलेऽष्टकुण्डे ॥ ९१ ॥

एह्येहि मातस्त्रिपुरे मदीये नेत्रे निवासं कुरु मञ्जुनेत्रे ।
भूतात्मकं विश्वमिदं नरस्य मे दर्शय त्वं तव चित्स्वरूपम् ॥ ९२ ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

एह्येहि मातस्त्रिपुरे मदीये वक्त्रे निवासं कुरु चन्द्रवक्त्रि ! ।
परापवादं वचनं नरस्य वागीश्वरं मे वदतां कुरुष्व ॥ ९३ ॥

एह्येहि मातस्त्रिपुरे मदीये चित्ते निवासं कुरु कल्पवल्लि ! ।
वेगेन जाड्यादि तमो निरस्य विधेहि दीप्तं तव चित्स्वरूपम् ॥ ९४ ॥

अनेन स्तोत्रपाठेन सर्वपापहरेण वै ।
प्रीयतां परमा शक्तिर्मातङ्गी सर्वकामदा ॥ ९५ ॥

इत्यागमसारे उमासहाचार्यविरचितं

श्रीमातङ्गीस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

※

अनुभूतसिद्धसारस्वतस्तवः ।

कलमरालविहङ्गमवाहना सितदुकूलविभूषणलेपना ।
प्रणतभूमिरुहामृतसारिणी प्रवरदेहविभाभरधारिणी ॥ १ ॥

अमृतपूर्णकमण्डलुधारिणी त्रिदशदानवमानवसेविता ।
भगवती परमैव सरस्वती मम पुनातु सदा नयनाम्बुजम् ॥ २ ॥

जिनपतिप्रथिताखिलवाङ्मयी गणधराननमण्डपनर्तकी ।
गुरुमुखाम्बुजखेलनहंसिका विजयते जगति श्रुतदेवता ॥ ३ ॥

अमृतदीधितिबिम्बसमाननां त्रिजगतीजननिर्मितमाननाम् ।
नवरसामृतवीचिसरस्वतीं प्रमुदितः प्रणमामि सरस्वतीम् ॥ ४ ॥

विततकेतकपत्रविलोचने विहितसंसृतिदुःकृतमोचने ।
धवलपक्षविहङ्गमलाञ्छिते जय सरस्वति पूरितवाञ्छिते ॥ ५ ॥

भवदनुग्रहलेशतरङ्गितास्तदुचितं प्रवदन्ति विपश्चितः ।
नृपसभासु यतः कमलाबलाकुचकलाललनानि वितन्वते ॥ ६ ॥

गतधना अपि हि त्वदनुग्रहात् कलितकोमलवाक्यसुधोर्मयः ।
चकितबालकुरङ्गविलोचना जनमनांसि हरन्तितरां नराः ॥ ७ ॥

करसरोरुहखेलनचञ्चला तव विभाति वरा जपमालिका ।
श्रुतिपयोनिधिमध्यविकस्वरोज्ज्वलतरङ्गकलाग्रहसाग्रहा ॥ ८ ॥

द्विरदकेसरिमारिभुजङ्गमासहनतस्करराजिरुजां भयम् ।
तव गुणावलिगानतरंगिणां न भविनां भवति श्रुतदेवते ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीँ क्लीँ ब्लीँ ततः श्रीँ तदनु हसकल ह्रीमथो ऐँ नमोऽन्ते
लक्षं साक्षाज्जपन्[2] यः करसमविधिना सत्तपा ब्रह्मचारी ।
निर्यान्तीं चन्द्रबिम्बात् कलयति मनसा त्वां जगच्चन्द्रिकाभां
सोऽत्यर्थं वह्निकुण्डे विहितघृतहुतिः स्याद् दशांशेन[3] विद्वान् ॥ १० ॥

रे रे लक्षणकाव्यनाटककथाचम्पूसमालोकने
क्वायासं वितनोषि बालिश मुधा किं नम्रवक्त्राम्बुजः ।
भक्त्याराधय मन्त्रराजसहसा येनानिशं भारतीं
तेन त्वं कवितावितानसविताद्वैतप्रबुद्धायसे ॥ ११ ॥

चञ्चच्चन्द्रमुखी प्रसिद्धमहिमा स्वाच्छन्द्यराज्यप्रदा–
ऽनायासेन सुरासुरगणैरभ्यर्थिता भक्तितः ।
देवी संस्तुतवैभवा मलयजालेपाङ्गरङ्गद्युतिः
सा मां पातु सरस्वती भगवती त्रैलोक्यसञ्जीविनी ॥ १२ ॥

स्तवनमेतदनेकगुणान्वितं पठति यो भविकः प्रमनाः प्रगे ।
स सहसा मधुरैर्वचनामृतैर्नृपगणानपि रञ्जयति स्फुटम् ॥ १३ ॥

॥ इत्यनुभूतसिद्धसारस्वतस्तवः परिपूर्णः ॥

※

पठितसिद्धसारस्वतस्तवः ।

ॐ नमः शारदायै ।

व्याप्तानन्तसमस्तलोकनिकरैँकारा समस्ता स्थिरा
याऽऽराध्या गुरुभिर्गुरोरपि गुरुर्देवैस्तु या वन्द्यते ।
देवानामपि देवता वितरता वाग्देवता देवता
स्वाहान्तः क्षिप ॐ यतः स्तवमुखं यस्याः स मन्त्रो वरः ॥ १ ॥

ॐ ह्रीँ श्रीँ प्रथमा प्रसिद्धमहिमा सन्तप्तचित्ते हिमा
सौँ ऐँ मध्यहिता जगत्त्रयहिता सर्वज्ञनाथा हिता ।
ह्रीँ क्ष्रौँ ब्लीँ चरमा गुणानुपरमा जायेत यस्या रमा
विद्वेषा वषडिन्द्रगीःपतिकरी वाणीं स्तुवे तामहम् ॥ २ ॥

१ ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ब्लूँ इति पाठान्तरम् २ °जपेत् यः । ३ संसेवेति विद्वान् । ४ तथा । ५ °लोकने-ष्वायासं । ६ वितनोते । ७ °राधन° । ८ तेना° । ९ येन । १० स्यात् सधराज्य° । ११ °रभ्यर्चिता । १२ भाविता ।

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy

ॐ कर्ण्णे वरकर्ण्णभूषिततनुः कर्ण्णेऽथ कर्ण्णेश्वरी
ह्रीँस्वाहान्तपदां समस्तविपदां छेत्री पदं संपदाम्।
संसारार्णवतारिणी विजयते विद्यावदाते शुभे
यस्याः सा पदवी सदा शिवपुरे देवीवतंसीकृता ॥ ३ ॥

सर्वाचारविचारिणी प्रतरिणी नौर्वाग्भवाब्धौ नृणाम्
वीणावेणुवरक्कणातिसुभगा दुःखाद्रिविद्राविणी।
सा वाणी प्रवणा महागुणगणा न्यायप्रवीणाऽमलं
शेते या तरणीरणीसु निपुणा जैनी पुनातु ध्रुवम् ॥ ४ ॥

ॐह्रीँबीजमुखा विधूतविमुखा संसेविता सन्मुखा
ऐँक्लीँसौँ सहिता सुरेन्द्रमहिता विद्वज्जनेभ्यो हिता।
विद्या विस्फुरति स्फुटं हितरतिर्यस्या विशुद्धा मतिः
सा ब्राह्मी जिनवक्त्रवज्रललने लीनाऽतिलीनातु माम् ॥ ५ ॥

ॐअर्हन्मुखपद्मवासिनि शुभे ज्वालासहस्रांशुभे
पापप्रक्षयकारिणि श्रुतधरे पापं दहत्वाशुभे।
क्षां क्षीं क्षूं वरबीजदुग्धधवले वं वं व हं स्वावहा
श्रीवाग्देव्यमृतोद्भवे यदि भवे मन्मानसे सा भवे ॥ ६ ॥

हस्ते शर्मदपुस्तिकां विदधती शतपत्रकं चापरं
लोकानां सुखदं प्रभूतवरदं सज्ज्ञानमुद्रं परम्।
तुभ्यं बालमृणालकन्दलसल्लीलाविलोलं करम्
प्रख्याता श्रुतदेवता विदधती सौख्यं नृणां सूनृतम् ॥ ७ ॥

हंसोहंसोऽतिगर्वं वहति हि विधृता यन्मयैषा मयैषा
यन्त्रं यन्त्रं यदेतत् स्फुटति सिततरां सैव यक्षावयक्षा।
साध्वी साध्वी शठार्या प्रविधृतभुवना दुर्धरा या धराया
देवी देवीजनार्घ्या रमतु मम सदा मानसे मानसे सा ॥ ८ ॥

स्पष्टपाठं पठत्येतद् ध्यानेन पटुनाऽष्टकम्।
अजस्रं यो जनस्तस्य भवन्त्युत्तमसंपदः ॥ ९ ॥

॥ इति पठितसिद्धसारस्वतस्तवः ॥

In Public domain. Digitization Muthulakshmi Research Academy